भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला पुष्प-१७३

ॐ

भट्टारक ज्ञानभूषण रचित

तत्त्वज्ञान तरंगिणी

卐

अनुवादक

स्व० पंडित गजाधरलालजी, न्यायतीर्थ

卐

प्रकाशक
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)-३६४ २५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहान जैनशास्त्रमाला, पुष्प-१७३

ॐ

भट्टारक ज्ञानभूषण रचित

तत्त्वज्ञानतरंगिणी

अनुवादक

स्व० पंडित गजाधरलालजी, न्यायतीर्थ

卐

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)-३६४२५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमावृत्ति : ११०० वि. सं. २०४५

द्वितीयावृत्ति : २००० वि सं. २०५४

मूल्य १०=००

मुद्रक

कहान मुद्रणालय

सोनगढ–३६४२५०

फोन–४४३८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

પરમ પૂજ્ય અધ્યાત્મમૂર્તિ સદ્ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

● प्रकाशकीय निवेदन ●

धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है, और उसे प्राप्त करनेके लिये विपरीताभिनिवेशरहित–तत्त्वज्ञानहेतुक निजात्मज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, कि जो इस 'तत्त्वज्ञान–तरंगिणी' पुस्तकमें दर्शाया गया है। इस युगमें क्रियाकांडविमूढ़ जैनजगतको सम्यग्दर्शनका महत्त्व व उसका उपाय समझमें आया हो तो उसका सब श्रेय परमोपकारी पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामीको है; उनके ही पुनीत प्रतापसे मुमुक्षु जगतमें सम्यग्दर्शनके विषयभूत शुद्धचिद्रूपकी चर्चा प्रवृत्त हुई है।

निजशुद्धचिद्रूपकी रुचिके पोषण हेतु अध्यात्मसाधनातीर्थ श्री सुवर्णपुरीमें परम–तारणहार पूज्य गुरुदेवश्रीकी एवं प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेनकी मंगलवर्षिणी धर्मोपकार–छायामें प्रवर्तमान देवगुरुभक्तिभीनी अनेक गतिविधिके अंगभूत प्रकाशनविभाग द्वारा, यह तत्त्वज्ञान, तरंगिणी'की यह द्वितीय आवृत्तिका प्रकाशन करते हुए अति हर्ष होता है।

यह पुस्तक 'श्री वीतराग-विज्ञानप्रकाशिनी ग्रन्थमाला,' खण्डवासे प्रकाशित तत्त्वज्ञान-तरंगिणीके आधारसे मुद्रित कराई गई है। प्रस्तुत प्रकाशनमें मूलपाठके भावोंके सुमेल हेतु श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगाससे प्रकाशित गुजराती तत्त्वज्ञान-तरंगिणीके अन्वयार्थको ध्यानमें ले कहीं-कहीं कुछ सुधार किया गया है। अतः उक्त दोनों प्रकाशिनी संस्थाके आभारी हैं। आशा है, मुमुक्षुसमाज ट्रस्टके इस प्रकाशनसे अवश्य लाभान्वित होगा।

इस पुस्तकके सुन्दर मुद्रणकार्यके लिये 'कहान मुद्रणालय'का ट्रस्ट आभारी है।

वि. सं. २०५४ वैशाख शुक्ला २ — प्रकाशनसमिति

श्री कहानगुरु १०९वाँ जन्मोत्सव — श्री दि. जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

✻

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–सूचिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१	शुद्धचिद्रूपके लक्षण	१
२	शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें उत्साह प्रदान	१३
३	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन	२६
४	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें सुगमताका वर्णन	३७
५	'शुद्धचिद्रूपकी पहिले कभी भी प्राप्ति नहीं हुई' इस बातका वर्णन	४८
६	शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें निश्चलताका वर्णन	५६
७	शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें नयोंके अवलम्बनका वर्णन	६५
८	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये भेद–विज्ञानकी आवश्यकताका वर्णन	७४
९	शुद्धचिद्रूपके ध्यानके लिये मोहत्यागकी उपयोगिता	८५
१०	शुद्धचिद्रूपके ध्यानार्थ अहंकार–ममकारताके त्यागका उपदेश	९६
११	शुद्धचिद्रूपके रुचिवन्तोंकी विरलताका वर्णन	१०२
१२	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके असाधारणकारण रत्नत्रय	११०
१३	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये विशुद्धिकी आवश्यकताका प्रतिपादन	११९
१४	अन्य कार्योंके करने पर भी शुद्धचिद्रूपके स्मरणका उपदेश	१२९
१५	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये परद्रव्योंके त्यागका उपदेश	१३९
१६	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये निर्जन स्थानका उपदेश	१४८
१७	शुद्धचिद्रूपमें प्रेमवर्धनका उपदेश	१५७
१८	शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके क्रमका वर्णन	१६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ

भट्टारकश्रीज्ञानभूषण विरचिता

तत्त्वज्ञान तरंगिणी

शुद्धचिद्रूपके लक्षण

प्रथम अध्याय

प्रणम्य शुद्धचिद्रूपं सानंदं जगदुत्तमं ।
तल्लक्षणादिकं वच्मि तदर्थी तस्य लब्धये ॥ १ ॥

अर्थः—निराकुलतारूप अनुपम आनंद भोगनेवाले, समस्त जगतमें उत्तम, शुद्ध चैतन्य स्वरूपको नमस्कार कर उसकी प्राप्तिका अभिलाषी, मैं (ग्रंथकार) उसके लक्षण आदिका प्रतिपादन करता हूँ ।

भावार्थः—इस श्लोकमें शुद्धचिद्रूप विशेष्य और सानंद एवं जगदुत्तम उसके विशेषण हैं । यहां पर शुद्ध आत्माकी जगह 'शुद्धचिद्रूप' ऐसा कहनेसे यह आशय प्रगट किया है कि ज्ञान आदि रूप चेतना और आत्मा जुदे पदार्थ नहीं—ज्ञान आदि रूप ही आत्मा है । अनेक महाशय आत्माको आनंद स्वरूप नहीं मानते—उससे आनंदको जुदा मानते हैं, इसलिये उनको समझानेके लिये 'सानंद' पद कहा है अर्थात् आत्मा आनंद स्वरूप है । नास्तिक आदि शुद्धचिद्रूपको मानते नहीं और उनकी दृष्टिमें वह उत्तम भी नहीं जँचता, इसलिये उनके बोधनार्थ यहाँ 'जगदुत्तम' पद दिया है अर्थात् लोकके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त पदार्थोंमें शुद्धचिद्रूप ही उत्तम है ।। १ ।।

पश्यत्यवैति विश्वं युगपन्नोकर्मकर्मणामणुभिः ।
अखिलैर्मुक्तो योऽसौ विज्ञेयः शुद्धचिद्रूपः ॥ २ ॥

अर्थः—जो समस्त जगतको एक साथ देखने जाननेवाला है । नोकर्म और कर्मके परमाणुओं (वर्गणाओं)से रहित है उसे शुद्धचिद्रूप जानना चाहिये ।

भावार्थः—कार्माणजातिकी पुद्गलवर्गणायें लोकाकाशमें सर्वत्र भरी हुई हैं और तेल आदिकी चिकनाईसे युक्त पदार्थ पर जिसप्रकार पवनसे प्रेरे धूलिके रेणु आकार लिपट जाते हैं, उसीप्रकार स्फटिक पाषाणके समान निर्मल भी, रागद्वेषरूपी चिकनाईसे युक्त आत्माके साथ कार्माण जातिकी वर्गणायें संबद्ध हो जाती हैं और इसके ज्ञान दर्शन आदि स्वभावोंको ढक देती है । परन्तु जो समस्त नोकर्म और कर्मोंकी वर्गणाओंसे रहित है और विरोधीकर्म (केवल) दर्शनावरण एवं (केवल) ज्ञानावरणका नाशकर अपने अखंड दर्शन और अखंड ज्ञानसे समस्त लोकको एक साथ देखने जाननेवाला है उसीका नाम शुद्धचिद्रूप है । औदारिक, वैक्रियिक, आहारक ये तीन शरीर एवं आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियोंके योग्य कर्मपुद्गल नोकर्म हैं और ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्म कहे जाते हैं ।। २ ।।

अर्थान् यथास्थितान् सर्वान् समं जानाति पश्यति ।
निराकुलो गुणी योऽसौ शुद्धचिद्रूप उच्यते ॥ ३ ॥

अर्थः—जो पदार्थ जिस रूपसे स्थित है उन्हें उसी रूपसे एक साथ जानने देखनेवाला, आकुलतारहित और समस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणोंका भंडार शुद्धचिद्रूप कहा जाता है । यहां इतना विशेष है कि पहिले श्लोकसे सिद्धोंको शुद्धचिद्रूप कहा है और इस श्लोकसे अर्हंत भी शुद्धचिद्रूप हैं यह बात बतलाई है ।। ३ ।।

स्पर्शरसगंधवर्णैः शब्दैर्मुक्तो निरंजनः स्वात्मा ।
तेन च खैरग्राह्योऽसावनुभावनागृहीतव्यः ॥ ४ ॥

अर्थः—यह स्वातमा स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और शब्दोंसे रहित है, निरंजन है । इसलिये किसी इन्द्रिय द्वारा गृहीत न होकर अनुभवसे–स्वानुभव प्रत्यक्षसे इसका ग्रहण होता है ।

भावार्थः—जिस पदार्थमें स्पर्श, रस आदि गुण होते हैं, उसका ही प्रत्यक्ष स्पर्शन आदि इन्द्रियोंसे होता है, अन्यका नहीं । इस स्वातमा–शुद्ध आत्मामें कोई स्पर्श आदि नहीं है, इसलिये स्पर्शके अभावसे इसे स्पर्शन इन्द्रियसे, रसके अभावसे रसना इन्द्रियसे, गंधके अभावसे घ्राण इन्द्रियसे, वर्णके अभावसे चक्षुरिन्द्रियसे और शब्दके अभावसे श्रोत्र इन्द्रियसे नहीं जान सकते । किन्तु केवल 'अहं अहं' इस अन्तर्मुखाकार प्रत्यक्षसे इसका ज्ञान होता है ऐसा जानना चाहिये ।। ४ ।।

सप्तानां धातूनां पिंडो देहो विचेतनो हेयः ।
तन्मध्यस्थोऽवैतीक्षतेऽखिलं यो हि सोहं चित् ॥ ५ ॥
आजन्म यदनुभूतं तत्सर्वं यः स्मरन् विजानाति ।
कररेखावत् पश्यति सोऽहं बद्धोऽपि कर्मणाऽत्यंतं ॥ ६ ॥
श्रुतमागमात् त्रिलोकेत्रिकालजं चेतनेतरं वस्तु ।
यः पश्यति जानाति च सोऽहं चिद्रूप लक्षणो नान्यः ॥ ७ ॥

अर्थः—यह शरीर शुक्र, रक्त, मज्जा आदि सात धातुओंका समुदाय स्वरूप है, चेतना शक्तिसे रहित और त्यागने योग्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, एवं जो इसके भीतर समस्त पदार्थोंको देखने जाननेवाला है वह मैं आत्मा हूँ ।। ५ ।। जन्मसे लेकर आज तक जो भी अनुभवा है उन सबको स्मरण कर हाथकी रेखाओंके समान जो जानता देखता है वह ज्ञानावरण आदि कर्मोंसे कड़ी रीतिसे जकड़ा हुआ भी मैं वास्तवमें शुद्धचिद्रूप ही हूँ ।। ६ ।। तीन लोक और तीनों कालोंमें विद्यमान चेतन और जड़ पदार्थोंको आगमसे श्रवणकर जो देखता जानता है वह चैतन्यरूप लक्षणका धारक मैं स्वात्मा हूँ । मुझ सरीखा अन्य कोई नहीं हो सकता । इन श्लोकोंसे आचार्य–उपाध्याय और सामान्य मुनियोंका भी शुद्धचिद्रूप पदसे ग्रहण किया है ।। ७ ।। स्वयं ग्रन्थकार भी शुद्धचिद्रूप पदसे किन–किनका ग्रहण है, इस बातको दिखाते हैं—

शुद्धचिद्रूप इत्युक्त ज्ञेयाः पंचार्हदादयः ।
अन्येऽपि तादृशाः शुद्ध शब्दस्य बहुभेदतः ॥ ८ ॥

अर्थः—शुद्धचिद्रूप पदसे यहां पर अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और सर्व साधु इन पाँचों परमेष्ठियोंका ग्रहण है तथा इनके समान अन्य शुद्धात्मा भी शुद्धिचिद्रूप शब्दसे लिये हैं, क्योंकि शुद्ध शब्दके बहुतसे भेद हैं ।

भावार्थः—यदि शुद्ध निश्चयनयसे कहा जाय तो सिद्ध-परमेष्ठी ही शुद्धचिद्रूप हो सकते हैं, परन्तु यहाँ पर भावीनैगम-नयसे मुनि आदिको भी शुद्धचिद्रूप माना है, क्योंकि आगे ये भी सिद्धस्वरूपको प्राप्त करेंगे ।। ८ ।।

नों दृक् नो धीर्न वृत्तं न तप इह यतो नैव सौख्यं न शक्ति–
र्नादोषो नो गुणीतो न परमपुरुषः शुद्धचिद्रूपतश्च ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोपादेयोप्यहेयो न न पररहितो ध्येयरूपो न पूज्यो
नान्योत्कृष्टश्च तस्मात् प्रतिसमयमहं तत्स्वरूप स्मरामि ॥९॥

अर्थः—यह शुद्धचिद्रूप ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। तप, सुख, शक्ति और दोषोंके अभाव स्वरूप है। गुणवान और परम पुरुष है। उपदेय–ग्रहण करने योग्य और अहेय (न त्यागने योग्य) है। पर परिणतिसे रहित ध्यान करने योग्य है। पूज्य और सर्वोत्कृष्ट है। किन्तु शुद्धचिद्रूपसे भिन्न कोई पदार्थ उत्कृष्ट नहीं, इसलिये प्रतिसमय मैं उसीका स्मरण मनन करता हूँ।

भावार्थः—संसारमें जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, तप, सुख आदि पदार्थोंको हितकारी और उत्तम मानते हैं, परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिसे ये सब अपने आप आकर प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि शुद्धचिद्रूपसे भिन्न कोई पदार्थ नहीं, इसलिये जिन महानुभावोंको सम्यग्दर्शन आदि पदार्थोंके पानेकी अभिलाषा है उन्हें चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपका ही स्मरण मनन ध्यान करें ॥ ९ ॥

ज्ञेयो दृश्योऽपि चिद्रूपो ज्ञाता दृष्टा स्वभावतः ।
न तथाऽन्यानि द्रव्याणि तस्माद् द्रव्योत्तमोऽस्ति सः ॥ १० ॥

अर्थः—यद्यपि यह चिद्रूप, ज्ञेय–ज्ञानका विषय, दृश्य–दर्शनका विषय है। तथापि स्वभावसे ही यह पदार्थोंका जानने और देखनेवाला है, परन्तु अन्य कोई पदार्थ ऐसा नहीं जो ज्ञेय और दृश्य होने पर जानने देखनेवाला हो, इसलिये यह चिद्रूप समस्त द्रव्योंमें उत्तम है।

भावार्थः—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और कालके भेदसे द्रव्य छह प्रकारके हैं। उन सबमें जीव द्रव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तम है, क्योंकि दूसरोंसे जाना देखा जाने पर भी यह ज्ञाता और दृष्टा है। परन्तु इससे अन्य सब द्रव्य जड हैं, इसलिये वे ज्ञान और दर्शनके ही विषय हैं, अन्य किसी पदार्थको देखते जानते नहीं ॥ १० ॥

स्मृतेः पर्यायाणामवनिजलभृतामिंद्रियार्थागसां च
त्रिकालानां स्वान्योदितवचनततेः शब्दशास्त्रादिकानां ।
सुतीर्थानामस्त्रप्रमुखकृतरुजां क्ष्मारुहाणां गुणानां
विनिश्चेयः स्वात्मा सुविमलमतिभिर्दृष्टिबोधस्वरूपः ॥ ११ ॥

अर्थः—जिनकी बुद्धि विमल है–स्व और परका विवेक रखनेवाली है, उन्हें चाहिये कि वे दर्शन–ज्ञान स्वरूप अपनी आत्माको बाल, कुमार और युवा आदि अवस्थाओं, क्रोध, मान, माया आदि पर्यायोंके स्मरणसे; पर्वत और समुद्रके ज्ञानसे, रूप, रस, गंध आदि इन्द्रियोंके विषय और अपने अपराधोंके; स्मरणसे, भूत भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालोंके ज्ञानसे; अपने, पराये वचनोंके स्मरणसे, व्याकरण–न्याय आदि शास्त्रोंके मनन–ध्यानसे; निर्वाणभूमियोंके देखने जाननेसे; शस्त्र आदिसे उत्पन्न हुये घावोंके ज्ञानसे; भांति भांतिके वृक्षोंकी पहिचानसे और भिन्न भिन्न पदार्थोंके भिन्न भिन्न गुणोंके ज्ञानसे पहिचाने ।

भावार्थः—जो पदार्थ ज्ञानशून्य जड़ है उनके अंदर यह सामर्थ्य नहीं कि वे बाल–कुमार–वृद्ध आदि अवस्था, क्रोध, मान, माया आदि पर्याय, पर्वत, समुद्ररूप आदि इन्द्रियोंके विषय, अपने–पराये अपराध, तीन काल, अपने परके वचन, न्याय–व्याकरण आदि शास्त्र, निर्वाणभूमि, घाव आदिका दुःख, भांति–भाँतिके वृक्ष और पदार्थोंके भिन्न–भिन्न गुण जान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकें, उन्हें तो दर्शन–ज्ञान स्वरूप आत्मा ही जान सकता है, इसलिये पर्याय आदिके स्मरणरूप ज्ञानको रखनेवाले आत्माको अन्य पदार्थोंसे जुदा कर पहिचान लेना चाहिये ।। ११ ।।

ज्ञप्त्या दृक् चिदिति ज्ञेया सा रूपं यस्य वर्तते ।
स तथोक्तोऽन्यद्रव्येण मुक्तत्वात् शुद्ध इत्यसौ ॥ १२ ॥
कथ्यते स्वर्णवत् तज्ज्ञैः सोहं नान्योस्मि निश्चयात् ।
शुद्धचिद्रूपोऽहमिति षड्वर्णार्थो निरुच्यते ॥ १३ ॥ युग्म ॥

अर्थः—ज्ञान और दर्शनका नाम चित् है । जिसके यह विद्यमान हो वह चिद्रूप–आत्मा कहा जाता है । तथा जिन-प्रकार कीट कालिमा आदि अन्य द्रव्योंसे रहित सुवर्ण शुद्ध सुवर्ण कहलाता है, उसी प्रकार यह चिद्रूप समस्त परद्रव्योंसे रहित होनेसे शुद्धचिद्रूप कहा जाता है । वही 'शुद्धचिद्रूप' निश्चयसे 'मैं हूँ'–इस प्रकार "शुद्धचिद्रूप" इन छह वर्णोंका परिष्कृत अर्थ समझना चाहिये ।

दृष्टैर्ज्ञातैः श्रुतैर्वा विहितपरिचितैर्निंदितैः संस्तुतैश्च,
नीतः संस्कार कोटिं कथमपि विकृतिं नाशनं संभवं वै ।
स्थूलैः सूक्ष्मैरजीवैरसुनिकरयुतैः खाप्रियैः खप्रियैस्तै–
रन्यैर्द्रव्यैर्न साध्यं किमपि मम चिदानंदरूपस्य नित्यं ॥ १४ ॥

अर्थः—मेरा आत्मा चिदानंद स्वरूप है मुझे परद्रव्योंसे, चाहे वे देखे हों, जाने हों, परिचयमें आये हों, बुरे हों, भले हों, भले प्रकार संस्कृत हों, विकृत हों, नष्ट हों, उत्पन्न हों, स्थूल हों, सूक्ष्म हों, जड़ हों, चेतन हों, इन्द्रियोंको प्रिय हों, वा अप्रिय हों, कोई प्रयोजन नहीं ।

भावार्थः—जब तक मुझे अपने चिदानंदस्वरूपका ज्ञान न था तब तक मैं बाह्य पदार्थोंमें लिप्त था–उन्हें ही अपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझता था । दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, भले, बुरे, प्रिय और अप्रिय आदि मानकर, हर्ष–विषाद करने लगता था, परन्तु जब मुझे आत्मिक चिदानंद स्वरूपका भान हुआ तब मुझे स्पष्ट जान पड़ा कि पर पदार्थोंसे मेरा किसी प्रकारका उपकार नहीं हो सकता, इसलिये इनसे तनिक भी प्रयोजन नहीं सध सकता ।। १४ ।।

विक्रियाभिरशेषाभिरंगकर्मप्रसूतिभिः ।
मुक्तो योऽसौ चिदानंदो युक्तोऽनंतदृगादिभिः ॥ १५ ॥

अर्थः—यह चिदानंद, शरीर और कर्मोंके समस्त विकारोंसे रहित है और अनंतदर्शन, अनंतज्ञान आदि आत्मिक गुणोंसे संयुक्त है ।

भावार्थः—अंग और कर्म जड़ हैं । वे चिदानंद स्वरूप आत्माको किसी प्रकार विकृत नहीं बना सकते, इसलिये यह चिदानंदस्वरूप आत्मा उनके विकारोंसे सर्वथा विमुक्त है तथा अनंतदर्शन, अनंतज्ञान आदि जो इसके निजस्वरूप हैं उनसे सर्वदा भूषित है ।। १५ ।।

असावनेकरूपोऽपि स्वभावादेकरूपभाग् ।
अगम्यो मोहिनां शीघ्रगम्यो निर्मोहिनां विदां ।। १६ ॥

अर्थः—यद्यपि यह चिदानंदस्वरूप आत्मा, अनेक स्वरूप है तथापि स्वभावसे यह एक ही स्वरूप है । जा मूढ़ हैं–मोहकी श्रृंखलासे जकड़े हुए हैं, वे इसका जरा भी पता नहीं लगा सकते; परन्तु जिन्होंने मोहको सर्वथा नष्ट कर दिया है, वे इसका बहुत जल्दी पता लगा लेते हैं ।

भावार्थः—आत्मा अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख अनंतवीर्य आदि अनंत गुणोंका भंडार है, इसलिये इसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तज्ञानस्वरूप, अनन्तदर्शनस्वरूप, अनन्तसुखस्वरूप आदि कहते हैं; परन्तु वास्तवमें यह एक स्वरूप–चेतनस्वरूप ही है। जो मनुष्य मोहके नशेमें मत्त है–परद्रव्योंको अपना मान सदा उनमें अनुरक्त रहते हैं, वे रत्ती भर भी इस चिदानंदस्वरूप आत्माका पता नहीं पा सकते; किन्तु जो मोहसे सर्वथा रहित हैं–पर पदार्थोंको जरा भी नहीं अपनाते, वे बहुत ही जल्दी इसके स्वरूपका आस्वाद कर लेते हैं ॥ १६ ॥

चिद्रूपोऽयमनाद्यंतः स्थित्युत्पत्तिव्ययात्मकः ।
कर्मणाऽस्ति युतोऽशुद्धः शुद्धः कर्मविमोचनात् ॥ १७ ॥

अर्थः—यह चिदानंदस्वरूप आत्मा, अनादि अनन्त है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों अवस्था स्वरूप है। जब तक कर्मोंसे युक्त बना रहता है, तब तक अशुद्ध और जिस समय कर्मोंसे सर्वथा रहित हो जाता है, उस समय शुद्ध हो जाता है।

भावार्थः—यह चिदानंदस्वरूप आत्मा कब हुआ और कब नष्ट होगा ऐसा नहीं कह सकते, इसलिये अनादि–अनन्त है। कभी इसकी घटज्ञानरूप पर्याय उत्पन्न होती है और कभी वह नष्ट होती है तथा इसका चेतनास्वरूप सदा विद्यमान रहता है, इसलिये यह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य तीनों अवस्थाओंका धारक है। और जब तक यह कर्मोंके जालमें फँसा रहता है तब तक तो अशुद्ध रहता है और कर्मोंसे सर्वथा जुदा होते ही शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥

शून्याशून्यस्थूलसूक्ष्मोऽस्तिनास्तिनित्याऽनित्याऽमूर्तिमूर्तित्वमुख्यैः ।
धर्मैर्युक्तोऽप्यन्यद्रव्यैर्विमुक्तः चिद्रूपोयं मानसे मे सदास्तु ॥ १८ ॥

अर्थः—यह चैतन्यस्वरूप आत्मा शून्यत्व, अशून्यत्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थूलत्व, सूक्ष्मत्व, अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, अमूर्तित्व और मूर्तित्व आदि अनेक धर्मोंसे संयुक्त है और पर द्रव्योंके सम्बन्धसे विरक्त है, इसलिये ऐसा चिद्रूप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहो ।

भावार्थः—यह चित्स्वरूप आत्मा निश्चयनयसे कर्मोंसे सर्वथा रहित है, इसलिये शून्य है, व्यवहारनयसे कर्मोंसे सम्बद्ध है, इसलिये अशून्य भी है । स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षा अस्तिस्वरूप है, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा नास्तिस्वरूप है । स्वस्वरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिये द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा नित्य है और प्रति–समय इसके ज्ञान–दर्शन आदि गुणोंमें परिणमन हुआ करता है, इसलिये पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा अनित्य भी है । कर्मोंसे क्षीर–नीरकी तरह एकमेक है, इसलिये कथंचित् मूर्त्त भी है और निश्चयनयसे कर्मोंसे सदा जुदा है, इसलिये कथंचित् अमूर्त्त भी है । इसीप्रकार वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि भी गुण इसके अन्दर विराजमान हैं और शरीर आदि बाह्य द्रव्योंसे यह सर्वथा रहित है ।। १८ ।।

ज्ञेयं दृश्यं न गम्यं मम जगति किमप्यस्ति कार्यं न वाच्यं
ध्येयं श्रव्यं न लभ्यं न च विशदमतेः श्रेयमादेयमन्यत् ।
श्रीमत्सर्वज्ञवाणी जलनिधिमथनात् शुद्धचिद्रूप रत्नं
यस्माल्लब्धं मयाहो कथमपि विधिनाऽप्राप्तपूर्वंप्रियं च ॥ १९ ॥

अर्थः—भगवान सर्वज्ञकी वाणीरूपी समुद्रके मंथन करनेसे मैंने बड़े भाग्यसे शुद्धचिद्रूपरूपी रत्न प्राप्त कर लिया है और मेरी बुद्धि पर पदार्थोंको निज न माननेसे स्वच्छ हो चुकी है, इसलिये अब मेरे संसारमें कोई पदार्थ न जानने लायक रहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और न देखने योग्य, ढूंढ़ने योग्य, कहने योग्य, ध्यान करने योग्य, सुनने योग्य, प्राप्त करने योग्य, आश्रय करने योग्य, और ग्रहण करने योग्य ही रहा; क्योंकि यह शुद्धचिद्रूप अप्राप्त पूर्व–पहिले कभी भी प्राप्त न हुआ था, ऐसा है और अति प्रिय है ।

भावार्थः—संसारमें अन्य समस्त पदार्थ प्राप्त कर लिये । अभी तक केवल शुद्धचिद्रूप पदार्थ नहीं पाया था और उसके अभावमें पर पदार्थोंको आत्मिय मानकर बुद्धि भी मलिन हो रही थी; परन्तु भगवान जिनेन्द्रके उपदेशसे आज मुझे शुद्ध-चिद्रूपकी प्राप्ति हो गई है । परपदार्थ कभी मेरे हितकारी नहीं बन सकते, ऐसा निश्चय होनेसे मेरी बुद्धि भी निर्मल है, इसलिये संसारमें मेरे लिये जानने, देखने, ढूंढ़ने आदिके योग्य कोई पदार्थ न रहा । शुद्धचिद्रूपके लाभसे मैंने सबको जान लिया, देख लिया और सुन आदि लिया ।। १६ ।।

शुद्धश्चिद्रूपरूपोहमिति मम दधे मंक्षु चिद्रूपरूपं
चिद्रूपेणैव नित्यं सकलमलभिदा तेनचिद्रूपकाय ।
चिद्रूपाद् भूरिसौख्यात् जगति वरतरात्तस्य चिद्रूपकस्य
माहात्म्यं वेत्ति नान्यो विमलगुणगणे जातु चिद्रूपकेऽज्ञात् ॥२०॥

इति मुमुक्षु भट्टारक श्री ज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूप लक्षणप्रतिपादकः प्रथमोऽध्यायः ।। १ ।।

अर्थः—शुद्धचित्स्वरूपी मैं समस्त दोषोंके दूर करनेवाले चित्स्वरूपके द्वारा चिद्रूपकी प्राप्तिके लिये सौख्यके भंडार और परम–पावन चिद्रूपसे अपने चिद्रूपको नित्य सत्वर धारण करता हूं । मुझसे भिन्न अन्य मनुष्य उसके विषयमें अज्ञ हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिये वे चित्स्वरूपको भले प्रकार नहीं जानते और ज्ञानके न होनेसे उसके माहात्म्यको न जानकर उसे धारण भी नहीं कर सकते ।

भावार्थः—जो मनुष्य जिस बातको जानता है, वही उसकी प्राप्तिके लिये उद्यम करता है और उसे प्राप्त कर सकता है । अज्ञानी मनुष्य अज्ञात पदार्थकी प्राप्तिके लिये न उद्यम कर सकता है और न उसे धारण ही कर सकता है । मैं शुद्धचित्स्वरूप हूँ, ऐसा चिद्रूपका मुझे ज्ञान है और उसके माहात्म्यको भी भले प्रकार समझता हूँ, इसलिये उसके द्वारा उससे उसकी प्राप्तिके लिये मैं उसे धारण करता हूँ; किन्तु जो मनुष्य चिद्रूपका ज्ञान नहीं रखता और चिद्रूपके माहात्म्यको भी नहीं जानता वह उसे धारण भी नहीं कर सकता ।।२०।।

इस प्रकार मोक्षप्राप्तिके अभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा विरचित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपका लक्षण प्रतिपादन करनेवाला पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्याय

शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें उत्साह प्रदान

मृत्पिंडेन विना घटो न न पटस्तंतून् विना जायते
धातुर्नैव विना दलं न शकटः काष्ठं विना कुत्रचित् ।
सत्स्वन्येष्वपि साधनेषु च यथा धान्यं न बीजं विना
शुद्धात्मस्मरणं विना किल मुनेर्मोक्षस्तथा नैव च ॥ १ ॥

अर्थः—जिस प्रकार अन्य सामान्य कारणोंके रहने पर भी कहीं भी असाधारण कारण मिट्टीके पिंडके बिना घट नहीं बन सकता, तंतुओंके बिना पट, खंदक (जिस जगह गेरू आदि उत्पन्न होते हैं) के बिना गेरू आदि धातु, काष्ठके बिना गाड़ी और बीजके बिना धान्य नहीं हो सकता, उसीप्रकार जो मुनि मोक्षके अभिलाषी हैं—मोक्ष स्थान प्राप्त करना चाहते हैं वे भी बिना शुद्धचिद्रूपके स्मरणके उसे नहीं पा सकते ।

भावार्थः—मूलमें साधारण कारणोंकी मौजूदगी होने पर भी यदि असाधारण कारण न हों तो कदापि कार्य नहीं हो सकता । घटकी उत्पत्तिमें असाधारण कारण मृत्पिंड, पटकी उत्पत्तिमें तंतु, धातुकी उत्पत्तिमें खंदक, गाड़ीकी उत्पत्तिमें काष्ठ और धान्यकी उत्पत्तिमें असाधारण कारण बीज है । तो जिस प्रकार मृत्पिड आदिके बिना घट आदि नहीं बन सकते, उसीप्रकार मोक्षकी प्राप्तिमें असाधारण कारण शुद्ध आत्माका स्मरण है; इसलिये अन्य हजारों सामान्य कारणोंके जुटाने पर भी बिना शुद्धचिद्रूपके स्मरणके मोक्ष प्राप्ति भी कदापि नहीं हो सकती, इसलिये मोक्ष प्राप्तिके अभिलाषियोंको चाहिये कि वे अवश्य शुद्धात्माका स्मरण करें ।। १ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीजं मोक्षतरोर्भवार्णवतरी दुःखाटवीपावको
दुर्गं कर्मभियां विकल्परजसां वात्यागसां रोधनं ।
शस्त्रं मोहजये नृणामशुभतापर्यायरोगौषधं
चिद्रूपस्मरणं समस्ति च तपोविद्यागुणानां गृहं ॥ २ ॥

अर्थः—यह शुद्धचिद्रूपका स्मरण मोक्षरूपी वृक्षका कारण है। संसाररूपी समुद्रसे पार होनेके लिए नौका है। दुःखरूपी भयंकर वनके लिये दावानल है। कर्मोंसे भयभीत मनुष्योंके लिये सुरक्षित सुदृढ़ किला है। विकल्परूपी रजके उड़नेके लिये पवनका समूह है। पापोंका रोकनेवाला है। मोहरूप सुभटके जीतनेके लिये शस्त्र है। नरक आदि अशुभ पर्यायरूपी रोगोंके नाश करनेके लिये उत्तम अव्यर्थ औषध है एवं तप, विद्या और अनेक गुणोंका घर है।

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपका स्मरण करनेवाला है वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है, संसारको पार कर लेता है, समस्त दुःखोंको दूर कर देता है, कर्मोंके भयसे रहित हो जाता है, विकल्प और पापोंका नाश कर देता है, मोहको जीत लेता है, नरक आदि पर्यायोंसे सर्वदाके लिये छूट जाता है और उनके तप, विद्या आदि गुणोंकी भी प्राप्ति कर लेता है। इसलिये शुद्धचिद्रूपका अवश्य स्मरण करना चाहिये ॥ २ ॥

क्षुत्तृड्रुग्वातशीतातपजलवचसः शस्त्रराजादिभीभ्यो
भार्यापुत्रारिनैः स्वानलनिगडगवाद्यश्वररैकंटकेभ्यः ।
संयोगायोगदंशिप्रपतनरजसो मानभंगादिकेभ्यो
जातं दुःखं न विद्मः क्व च पटति नृणांशुद्धचिद्रूपभाजां ॥३॥

अर्थः—संसारमें जीवोंको क्षुधा, तृषा, रोग, वात, ठंडी, उष्णता, जल, कठोर वचन, शस्त्र, राजा, स्त्री, पुत्र, शत्रु,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धनता, अग्नि, बेड़ी, गौ, भैंस, धन, कंकट, संयोग, वियोग, डाँस, मच्छर, पतन, धूलि और मानभंग आदिसे उत्पन्न हुये अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं; परन्तु न मालूम जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेवाले हैं उनके वे दुःख कहाँ विलीन हो जाते हैं ?

भावार्थः—जो महानुभाव शुद्धात्माका स्मरण करनेवाले हैं, उन्हें भूख नहीं सताती, प्यास दुःख नहीं देती, रोग नहीं होता, वात नहीं सताती, ठंड नहीं लगती, उष्णता व्याकुल नहीं करती, जलका उपद्रव नहीं होता, क्रूर मनुष्यों द्वारा कहे हुये दुष्ट वचन दुःख नहीं पहुँचाते, राजा आदि दण्ड नहीं दे सकते, दुष्ट स्त्री, पुत्र-शत्रुओंसे उत्पन्न हुआ दुःख नहीं भोगना पड़ता, निर्धनता—दरिद्रता नहीं होती, अग्निका उपद्रव नहीं सहन करना पड़ता, बन्धनमें नहीं बँधना पड़ता, गौ और अश्व आदिसे पीड़ा नहीं होती, धनकी चोरीसे दुःख नहीं होता, कांटे दुःख नहीं देते, अनिष्ट पदार्थोंका संयोग नहीं होता, इष्ट पदार्थ वियोग नहीं होता, डाँस—मच्छर दुःख नहीं दे सकते, पतन नहीं हो सकता तथा धूलि और मानभंगका भी कष्ट नहीं भोगना पड़ता । इसलिये शुद्धचिद्रूपका स्मरण परम सुख देनेवाला है ।। ३ ।।

स कोपि परमानन्दश्चिद्रूपध्यानतो भवेत् ।
तदंशोपि न जायेत त्रिजगत्स्वामिनामपि ॥ ४ ॥

अर्थः—शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे वह एक अद्वितीय और अपूर्व ही आनन्द होता है कि जिसका अंश भी तीन जगतके स्वामी इन्द्र आदिको प्राप्त नहीं हो सकता ।

भावार्थः—इन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र यद्यपि सर्वोत्तम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयसुखका भोग करते हैं; परन्तु वह सुख, सुख नहीं कहलाता क्योंकि शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे उत्पन्न हुये आत्मिक नित्य सुखकी वह अनित्य तथा पदार्थोंसे जन्य होनेसे अंश मात्र भी तुलना नहीं कर सकता ।। ४ ।।

सौख्यं मोहजयोऽशुभास्रवहतिर्नाशोऽतिदुष्कर्मणा-
मत्यंतं च विशुद्धता नरि भवेदाराधना तात्त्विकी ।
रत्नानां त्रितयं नृजन्म सफलं संसार भीनाशनं
चिद्रूपोहमितिस्मृतेश्च समता सद्भ्यो यशः कीर्त्तनं ।।५।।

अर्थः—"मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" ऐसा स्मरण होते ही नाना प्रकारके सुखोंकी प्राप्ति होती है । मोहका विजय, अशुभ आस्रव और दुष्कर्मोंका नाश, अतिशय विशुद्धता, सर्वोत्तम तात्त्विक आराधना, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्नोंकी प्राप्ति, मनुष्य जन्मकी सफलता, संसारके भयका नाश, सर्व जीवोंमें समता और सज्जनोंके द्वारा कीर्तिका गान होता है ।

भावार्थः—शुद्धचिद्रूपका स्मरण ही जब सौख्यका कर्ता, मोहका जीतनेवाला, अशुभ आस्रव एवं दुष्कर्मोंका हर्ता होता है और अतिशय विशुद्धता, सर्वोत्तम आराधना सम्यग्दर्शन आदि रत्नोंकी प्राप्ति, मनुष्य जन्मकी सफलता, संसारके भयका नाश, सर्व जीवोंमें समता एवं सज्जनोंसे कीर्तिगान करानेवाला है, तब उसकी प्राप्ति तो और भी उत्तमोत्तम फल प्रदान करनेवाली होगी, इसलिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपका सदा स्मरण करते हुये उसकी प्राप्तिका उपाय करें ।। ५ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतं शीलं श्रुतं चाखिलखजयतपोदृष्टिसद्भावनाश्च
धर्मो मूलोत्तराख्या वरगुणनिकरा आगसां मोचनं च।
बाह्यांतः सर्वसंगत्यजनमपि विशुद्धांतरगं तदानी–
मूर्मीणां चोपसर्गस्य सहनमभवच्छुद्धचित्संस्थितस्य ॥ ६ ॥

अर्थ :—जो महानुभाव शुद्धचिद्रूपमें स्थित है उसके सम्यक्चारित्र, शील और शास्त्रकी प्राप्ति होती है, इन्द्रियोंका विजय होता है, तप, सम्यग्दर्शन, उत्तम भावना और धर्मका लाभ होता है, मूल और उत्तररूप कहलाते उत्तमगुण प्राप्त होते हैं, समस्त पापोंका नाश, बाह्य और अभ्यंतर परिग्रहका त्याग और अन्तरंग विशुद्ध हो जाता है एवं वह नानाप्रकारके उपसर्गोंकी तरंगोंको भी झेल लेता है।

भावार्थ :—शुद्धचिद्रूपमें मनके स्थिर करनेसे उत्तमोत्तम गुण प्राप्त होते हैं और दुःख दूर हो जाते हैं, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे कर्ममलरहित पवित्र चैतन्यस्वरूप आत्मामें अपना मन स्थिर करें ॥ ६ ॥

तीर्थेषूत्कृष्टतीर्थं श्रुतिजलधिभवं रत्नमादेयमुच्चैः
सौख्यानां वा निधानं शिवपदगमने वाहनं शीघ्रगामि।
वात्यां कर्मौघरेणौ भववनदहने पावकं विद्धि शुद्ध–
चिद्रूपोहं विचारादिति वरमतिमन्नक्षराणां हि षट्कं ॥ ७ ॥

अर्थ :—ग्रन्थकार उपदेश देते हैं कि—हे मतिमन्! 'शुद्धचिद्रूपोऽहं' मैं शुद्धचित्स्वरूप हूँ, ऐसा सदा तुझे विचार करते रहना चाहिये; क्योंकि 'शुद्धचिद्रूपोहं' ये छै अक्षर संसारसे पार करने वाले समस्त तीर्थोंमें उत्कृष्ट तीर्थ हैं। शास्त्ररूपी समुद्रसे उत्पन्न हुये 'ग्रहण करनेके लायक' उत्तम रत्न हैं। समस्त सुखोंके विशाल खजाने हैं। मोक्ष स्थानमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ले जानेके लिये बहुत जल्दी चलने वाले वाहन (सवारी) हैं। कर्मरूपी धूलिके उड़ानेके लिये प्रबल पवन हैं और संसाररूपी वनको जलानेके लिये जाज्वल्यमान अग्नि हैं ।। ७ ।।

क्व यांति कार्याणि शुभाशुभानि क्व यांति संगाश्चिदचित्स्वरूपाः ।
क्व यांति रागादय एव शुद्धचिद्रूपकोहंस्मरणे न विद्मः ॥ ८ ॥

अर्थ :—हम नहीं कह सकते कि—'शुद्धचिद्रूपोहं' मैं शुद्धचित्स्वरूप हूँ, ऐसा स्मरण करते ही शुभ-अशुभ कर्म, चेतन–अचेतनस्वरूप परिग्रह और राग, द्वेष आदि दुर्भाव कहाँ लापता हो जाते हैं ?

भावार्थ :—शुद्धचिद्रूपके स्मरण करते ही शुभ-अशुभ समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं, चेतन–अचेतनस्वरूप परिग्रहोंसे भी सर्वथा सम्बन्ध छूट जाता है और राग-द्वेष आदि महादुष्ट भाव भी एक ओर किनारा कर जाते हैं, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे अवश्य इस चिद्रूपका स्मरण ध्यान करें ।। ८ ।।

मेरुः कल्पतरुः सुवर्णममृतं चिंतामणिः केवलं
साम्यं तीर्थंकरो यथा सुरगवी चक्री सुरेंद्रो महान् ।
भूमृद्भूरुहधातुपेयमणिधीवृत्ताप्तगोमानवा–
मर्त्येष्वेव तथा च चिंतनमिह ध्यानेषु शुद्धात्मनः ॥९॥

अर्थ :—जिस प्रकार पर्वतोंमें मेरु, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, धातुओंमें स्वर्ण, पीने योग्य पदार्थोंमें अमृत, रत्नोंमें चिन्तामणि-रत्न, ज्ञानोंमें केवलज्ञान, चारित्रोंमें समतारूप चारित्र, आप्तोंमें तीर्थंकर, गायोंमें कामधेनु, मनुष्योंमें चक्रवर्ती और देवोंमें इन्द्र महान और उत्तम हैं उसीप्रकार ध्यानोंमें शुद्ध-चिद्रूपका ध्यान ही सर्वोत्तम है।

भावार्थ :—जिस प्रकार अन्य पर्वत मेरुपर्वतकी, अन्यवृक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पवृक्षकी, अन्य धातु स्वर्णकी, अन्य पीने योग्य पदार्थ अमृतकी और अन्य रत्न आदि पदार्थ चिन्तामणि आदिकी तुलना नहीं कर सकते, उसीप्रकार अन्य पदार्थोंका ध्यान शुद्धात्माके ध्यानके समान नहीं हो सकता, इसलिये शुद्धचिद्रूपका ध्यान ही सर्वोत्तम और लाभदायक है ।। ९ ।।

निधानानां प्राप्तिर्न च सुरकुरुहां कामधेनोः सुधा–
याश्चितारत्नानामसुरसुरनराकाशगेशेंदिराणां ।
खभोगानां भोगावनिभवनभुवां चाहमिंद्रादिलक्ष्म्या
न संतोषं कुर्यादिह जगति यथा शुद्धचिद्रूपलब्धिः ॥१०॥

अर्थ :—यद्यपि अनेक प्रकारके निधान (खजाने), कल्पवृक्ष, कामधेनु, अमृत, चिन्तामणि रत्न, सुर, असुर, नर और विद्याधरोंके स्वामियोंकी लक्ष्मी, भोगभूमियोंमें प्राप्त इन्द्रियोंके भोग और अहमिन्द्र आदिकी लक्ष्मीकी प्राप्ति संसारमें संतोष–सुख प्रदान करने वाली है; परन्तु जिस प्रकारका संतोष शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिसे होता है वैसा इन किसीसे नहीं होता ।

भावार्थ :—अनेक प्रकारके निधान, कल्पवृक्ष आदि पदार्थ संसारमें सर्वथा दुर्लभ हैं—बड़े भाग्यसे मिलते हैं, इसलिये इनकी प्राप्तिसे संतोष होता है परन्तु वैसा संतोष नहीं होता जैसा कि शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिसे होता है; क्योंकि निधान, कल्पवृक्ष आदि अनित्य हैं उनसे थोड़े कालके लिये ही संतोष हो सकता है, शुद्धचिद्रूप नित्य है—कभी भी इसका नाश नहीं हो सकता, इसलिये इसकी प्राप्तिसे जो सुख होता है वह सदा विद्यमान रहता है ।। १० ।।

ना दुर्वर्णो विकर्णो गतनयनयुगो वामनः कुब्जको वा
छिन्नघ्राणः कुशब्दो विकलकरयुतो वाग्विहीनोऽपि पंगुः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंजो निःस्वोऽनधीतश्रुत इह बधिरः कुष्ठरोगादियुक्तः
श्लाध्यः चिद्रूपचिंतापरः इतरजनो नैव सुज्ञानवद्भिः ॥ ११ ॥

अर्थ :—जो पुरुष शुद्धचिद्रूपकी चिन्तामें रत है—सदा शुद्धचिद्रूपका विचार करता रहता है वह चाहे दुर्वर्ण-काला, कबरा-बूचा, अंधा, बोना, कुबड़ा, नकटा, कुशब्द बोलनेवाला, हाथ रहित—ठूंठा, गूंगा, लूला, गंजा, दरिद्र, मूर्ख, बहरा और कोढ़ी आदि कोई भी क्यों न हो विद्वानोंकी दृष्टिमें प्रशंसाके योग्य है। सब लोग उसे आदरणीय दृष्टिसे देखते हैं; किन्तु अन्य सुन्दर भी मनुष्य यदि शुद्धचिद्रूपकी चिन्तासे विमुख है तो उसे कोई अच्छा नहीं कहता।

भावार्थ :—चाहे मनुष्य कुरूप और निर्धन ही क्यों न हो यदि वह गुणी है तो अवश्य उसके गुणोंका आदर सत्कार होता है; किन्तु रूपवान धनी मनुष्य भी यदि गुणशून्य है तो कोई भी उसका मान नहीं करता। कुबड़ा, अंधा, लंगड़ा आदि होनेपर भी यदि कोई पुरुष शुद्धचिद्रूपमें रत है तो वह अवश्य आदरणीय है; क्योंकि वह गुणी है और अन्य मनुष्य चाहे वह सुन्दर, सुडौल और धनवान ही क्यों न हो यदि शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे शून्य है, तो वह कदापि प्रशंसाके योग्य नहीं गिना जाता ॥ ११ ॥

रेणूनां कर्मणः संख्या प्राणिनो वेत्ति केवली ।
न वेद्मीति क्व यांत्येते शुद्धचिद्रूपचिंतने ॥ १२ ॥

अर्थ :—आत्माके साथ कितने कर्मकी रेणुओं (वर्गणाओं) का सम्बन्ध होता है? इस बातकी सिवाय केवलीके अन्य कोई भी मनुष्य गणना नहीं कर सकता; परन्तु न मालूम शुद्ध-चिद्रूपकी चिन्ता करते ही वे अगणित भी कर्मवर्गणायें कहां लापता हो जाती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ :—आत्माके साथ अनन्त वर्गणाओंका प्रतिसमय बन्ध होता रहता है, जिनको केवलीके सिवाय अन्य कोई जान-देख नहीं सकता; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी भावनासे आत्माके साथ किसी भी कर्मवर्गणाका सम्बन्ध नहीं होता ।।१३।।

तं चिद्रूपं निजात्मानं स्मर शुद्ध प्रतिक्षणं ।
यस्य स्मरणमात्रेण सद्यः कर्मक्षयो भवेत् ।।१३।।

अर्थ :—हे आत्मन् ! स्मरण करते ही समस्त कर्मोंके नाश करने वाले शुद्धचिद्रूपका तूँ प्रतिक्षण स्मरण कर; क्योंकि शुद्धचिद्रूप और स्वात्मामें कोई भेद नहीं-दोनों एक ही हैं ।।१३।।

उत्तमं स्मरणं शुद्धचिद्रूपोऽहमितिस्मृतेः ।
कदापि क्वापि कस्यापि श्रुतं दृष्टं न केनचित् ।।१४।।

अर्थ :—"मैं शुद्धचिद्रूप हूं" ऐसा स्मरण ही सर्वोत्तम स्मरण माना गया है; क्योंकि उससे उत्तम स्मरण कभी भी, कहीं भी किसी भी स्थान पर हुआ, किसीने भी न सुना और न देखा है ।

भावार्थ :—स्त्री पुत्र आदिका जो स्मरण प्रति समय इस जीवको होता हुआ, देखा व सुना गया है, उससे भी शुद्धचिद्रूपका स्मरण सर्वोत्तम स्मरण समझना चाहिये ।।१४।।

शुद्धचिद्रूपसदृश ध्येयं नैव कदाचन ।
उत्तमं क्वापि कस्यापि भूतमस्ति भविष्यति ।। १५ ।।

अर्थ :—शुद्धचिद्रूपके समान उत्तम और ध्येय-ध्याने योग्य पदार्थ कदाचित् कहीं न भी हुआ, न है और न होगा, (इसलिये शुद्धचिद्रूपका ही ध्यान करना चाहिये) ।।१५।।

ये याता यांति यास्यंति योगिनः शिवसंपदः ।
समासाध्यैव चिद्रूपं शुद्धमानंदमंदिरं ।। १६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :—जो योगी मोक्ष—नित्यानन्दरूपी संपत्तिको प्राप्त हुये, होते हैं और होंगे, उसमें शुद्धचिद्रूपकी आराधना ही कारण है । बिना शुद्धचिद्रूपकी भलेप्रकार आराधनाके कोई मोक्षनित्यानंद नहीं प्राप्त कर सकता; क्योंकि यह शुद्धचिद्रूप ही आनन्दका मन्दिर है—अद्वितीय नित्य आनन्द प्रदान करनेवाला है ॥१६॥

द्वादशांगं ततो बाह्यं श्रुतं जिनवरोदितं ।
उपादेयतया शुद्धचिद्रूपस्तत्र भाषितः ॥१७॥

अर्थ :—भगवान जिनेन्द्रने अंगप्रविष्ट (द्वादशांग) और अंगबाह्य—दो प्रकारके शास्त्रोंका प्रतिपादन किया है। इन शास्त्रोंमें यद्यपि अनेक पदार्थोंका वर्णन किया है; तथापि वे सब हेय (त्यागने योग्य) कहे हैं और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) शुद्धचिद्रूपको बतलाया है ॥१७॥

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानाद्गुणाः सर्वे भवंति च ।
दोषाः सर्वे विनश्यंति शिवसौख्यं च संभवेत् ॥१८॥

अर्थ :—शुद्धचिद्रूपका भलेप्रकार ध्यान करनेसे समस्त गुणोंकी प्राप्ति होती है । राग-द्वेष आदि सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और निराकुलतारूप मोक्ष सुख मिलता है ॥१८॥

चिद्रूपेण च घातिकर्महननाच्छुद्धेन धाम्ना स्थितं
यस्मादत्र हि वीतरागवपुषो नाम्नापि नुत्यापि च ।
तद्बिंबस्य तदोकसो झगिति तत्कारायकस्यापि च
सर्वं गच्छति पापमेति सुकृतं तत्तस्य किं नो भवेत् ॥ १९ ॥

अर्थ :—शुद्धचिद्रूप(के ध्यान)से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तरायरूप घातिया कर्मोंका नाश हो जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है; क्योंकि वीतराग–शुद्धचिद्रूपका नाम लेनेसे, उनकी स्तुति करनेसे तथा उनकी मूर्ति और मन्दिर बनवानेसे ही जब समस्त पाप दूर हो जाते हैं और अनेक पुण्योंकी प्राप्ति होती है, तब उनके (शुद्धचिद्रूपके) ध्यान करनेसे तो मनुष्यको क्या उत्तम फल प्राप्त न होगा ? अर्थात् शुद्धचिद्रूपका ध्यानी मनुष्य उत्तमसे उत्तम फल प्राप्त कर सकता है ।। १९ ।।

कोऽसौ गुणोस्ति भुवने न भवेत्तदा यो
दोषोऽथवा क इह यस्त्वरितं न गच्छेत् ।
तेषां विचार्य कथयंतु बुधाश्च शुद्ध–
चिद्रूपकोऽहमिति ये यमिनः स्मरंति ।। २० ।।

अर्थ :—ग्रन्थकार कहते हैं—प्रिय विद्वानों ! आप ही विचार कर कहें, जो मुनिगण 'मैं शुद्धचिद्रूप हूँ' ऐसा स्मरण करने वाले हैं उन्हें उस समय कौनसे तो वे गुण हैं जो प्राप्त नहीं होते और कौनसे वे दोष हैं जो उनके नष्ट नहीं होते अर्थात् शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेवालोंको समस्त गुण प्राप्त हो जाते हैं और उनके सब दोष दूर हो जाते हैं ।।२०।।

तिष्ठंत्वेकत्र सर्वे वरगुणनिकराः सौख्यदानेऽतितृप्ताः
संभूयात्यंतरम्या वरविधिजनिता ज्ञानजायां तुलायां ।
पार्श्वेन्यस्मिन् विशुद्धा ह्युपविशतु वरा केवला चेति शुद्ध-
चिद्रूपोहंस्मृतिर्भो कथमपि विधिना तुल्यतां ते न यांति ।२१।

अर्थ :—ज्ञानको तराजूकी कल्पना कर उसके एक पलड़ेमें समस्त उत्तमोत्तम गुण, जो भांति–भांतिके सुख प्रदान करने वाले हैं, अत्यन्त रम्य और भाग्यसे प्राप्त हुये हैं, इकट्ठे रक्खें और दूसरे पलड़ेमें अतिशय विशुद्ध केवल 'मैं शुद्धचिद्रूप हूँ'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी स्मृतिको रखें तब भी वे गुण शुद्धचिद्रूपकी स्मृतिकी तनिक भी तुलना नहीं कर सकते।

भावार्थ :—यद्यपि संसारमें अनेक उत्तमोत्तम गुण हैं और वे भांति भांतिके सुख प्रदान करते हैं; तथापि ज्ञानदृष्टिसे देखने पर वे शुद्धचिद्रूपकी स्मृतिके बराबर कीमती नहीं हो सकते—शुद्धचिद्रूपकी स्मृति ही सर्वोत्तम है ।।२१।।

तीर्थतां भूः पदैः स्पृष्टा नाम्ना योऽघचयः क्षयं ।
सुरौघो याति दासत्वं शुद्धचिद्रूक्तचेतसां ॥ २२ ॥

अर्थ :—जो महानुभाव शुद्धचिद्रूपके धारक हैं—उसके ध्यानमें अनुरक्त हैं, उनके चरणोंसे स्पर्श की हुई भूमि तीर्थ 'अनेक मनुष्योंको संसारसे तारने वाली' हो जाती है। उनके नामके लेनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है और अनेक देव उनके दास हो जाते हैं ।।२२।।

शुद्धस्य चित्स्वरूपस्य शुद्धोन्योऽन्यस्य चिंतनात् ।
लोहं लोहाद् भवेत्पात्रं सौवर्णं च सुवर्णतः ॥२३॥

अर्थ :—जिसप्रकार लोहेसे लोहेका पात्र और स्वर्णसे स्वर्णका पात्र बनता है, उसीप्रकार शुद्धचिद्रूपकी चिन्ता करनेसे आत्मा शुद्ध और अन्यके ध्यान करनेसे अशुद्ध होता है।

भावार्थ :—कारण जैसा होता है वैसा कार्य भी उससे ही पैदा होता है। जिसप्रकार लोहपात्रका कारण लोह है, इसलिये उससे लोहका पात्र और स्वर्णपात्रका कारण स्वर्ण है, इसलिये उससे स्वर्णका ही पात्र बन सकता है। उसीप्रकार आत्माके शुद्ध होनेमें शुद्धचिद्रूपकी चिन्ता प्रधान कारण है, इसलिये उससे आत्मा शुद्ध होता है और अशुद्धचिद्रूपकी

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

चिन्तासे अशुद्ध आत्मा होता है, क्योंकि आत्माके अशुद्ध होनेमें अशुद्धचिद्रूपकी चिंता कारण है ।। २३ ।।

मग्ना ये शुद्धद्रूचिपे ज्ञानिनो ज्ञानिनोपि ये ।
प्रमादिनः स्मृतौ तस्य तेपि मग्ना विधेर्वशात् ।। २४ ।।

अर्थ :—जो शुद्धचिद्रूपके ज्ञाता हैं, वे भी उसमें मग्न हैं और जो उसके ज्ञाता होने पर भी उसके स्मरण करनेमें प्रमाद करने वाले हैं, वे भी उसमें मग्न हैं । अर्थात् स्मृति न होने पर भी उन्हें शुद्धचिद्रूपका ज्ञान ही आनन्द प्रदान करने वाला है ।। २४ ।।

सप्तधातुमयं देहं मलमूत्रादिभाजनं ।
पूज्यं कुरु परेषां हि शुद्धचिद्रूपचिंतनात् ।। २५ ।।

इति मुमुक्षु भट्टारक ज्ञानभूषणविरचितायां तत्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपध्यानोत्साहसंपादको द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

अर्थ :—यह शरीर रक्त, वीर्य, मज्जा आदि सात धातु-स्वरूप है । मलमूत्र आदि अपवित्र पदार्थोंका घर है, इसलिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि वे इस निकृष्ट और अपवित्र शरीरको भी शुद्धचिदरूपकी चिन्तासे दूसरोंके द्वारा पूज्य और पवित्र बनावें ।

भावार्थ :—यह शरीर अपवित्र पदार्थोंसे उत्पन्न अपवित्र पदार्थोंका घर है, इसलिये महा अपवित्र है; तथापि शुद्धचिद्रूपके ध्यान करनेसे यह पवित्र हो जाता है, इसलिये शरीरको पवित्र बनानेके लिये विद्वानोंको अवश्य शुद्धचिद्रूपका ध्यान करना चाहिये ।।२५।।

इसप्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषणनिर्मित तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपके ध्यानका उत्साह प्रदान करने वाला दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।।२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके उपायोंका वर्णन

जिनेशस्य स्नानात् स्तुतियजनजपान्मंदिरार्चाविधाना-
च्चतुर्धा दानाद्वाध्ययनखजयतो ध्यानतः संयमाच्च ।
व्रताच्छीलात्तीर्थादिकगमनविधेः क्षांतिमुख्यप्रधर्मात्
क्रमाच्चिद्रूपाप्तिर्भवति जगति ये वांछकास्तस्य तेषां ॥ १ ॥

अर्थ :—जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति करना चाहते हैं उन्हें जिनेन्द्रका अभिषेक करनेसे, उनकी स्तुति, पूजा और जप करनेसे, मन्दिरकी पूजा और उसके निर्माणसे, आहार, औषध, अभय और शास्त्र–चार प्रकारके दान देनेसे, शास्त्रोंके अध्ययनसे, इन्द्रियोंके विजयसे, ध्यानसे, संयमसे, व्रतसे, शीलसे, तीर्थं आदिमें गमन करनेसे और उत्तम क्षमा आदि धर्मोके धारनेसे क्रमशः शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति होती है ।

भावार्थ :—यदि वास्तवमें देखा जाय तो शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेसे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति होती है; परन्तु भगवानका अभिषेक, उनकी स्तुति और जप आदि भी चिद्रूपकी प्राप्तिमें कारण है; क्योंकि अभिषेक आदिके करनेसे शुद्धचिद्रूपकी ओर दृष्टि जाती है, इसलिये शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषियोंको अवश्य भगवानके अभिषेक स्तुति आदि करने चाहिये ॥१॥

देवं श्रुतं गुरुं तीर्थं भदंतं च तदाकृतिं ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानहेतुत्वाद् भजते सुधीः ॥२॥

अर्थ :—देव, शास्त्र, गुरु, तीर्थ और मुनि तथा इन सबकी प्रतिमा शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें कारण हैं—विना इनकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूजा सेवा किये शुद्धचिद्रूपकी ओर ध्यान जाना सर्वथा दुःसाध्य है, इसलिये शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषी विद्वान, अवश्य देव आदिकी सेवा उपासना करते हैं ॥२॥

अनिष्टान् खहृदामर्थानिष्टानपि भजेत्त्यजेत् ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्याने सुधीर्हेतूनहेतुकान् ॥३॥

अर्थ :—शुद्धचिद्रूपके ध्यान करते समय इन्द्रिय और मनके अनिष्ट पदार्थ भी यदि उसकी प्राप्तिमें कारण स्वरूप पड़े तो उनका आश्रय कर लेना चाहिये और इन्द्रिय–मनको इष्ट होने पर भी यदि वे उसकी प्राप्तिमें कारण न पड़े—बाधक पड़े तो उन्हें सर्वथा छोड़ देना चाहिये ।

भावार्थ :—संसारमें पदार्थ दो प्रकारके हैं—इष्ट और अनिष्ट । जो पदार्थ मन और इन्द्रियोंको प्रिय हैं, वे इष्ट हैं और जो अप्रिय हैं, वे अनिष्ट हैं । इनमें अनिष्ट रहने पर भी जो पदार्थ शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें कारण हों उनका अवलंबन कर लेना चाहिये और जो इष्ट होने पर भी उसकी प्राप्तिमें कारण न हों उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि उनसे कोई प्रयोजन नहीं है ॥३॥

मुंचेत्समाश्रयेच्छुद्धचिद्रूपस्मरणेऽहितं ।
हितं सुधीः प्रयत्नेन द्रव्यादिकचतुष्टयं ॥४॥

अर्थ :—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप पदार्थोंमें जो पदार्थ शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेमें हितकारी न हो उसे छोड़ देना चाहिये और जो उसकी प्राप्तिमें हितकारी हो उसका बड़े प्रयत्नसे आश्रय करना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—कोई कोई द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (परिणाम) ऐसे आकर उपस्थित हो जाते हैं कि शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें विघ्नकारक बन जाते हैं, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि इस प्रकारके पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर दे; परन्तु बहुतसे द्रव्य, क्षेत्र आदि शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें अनुकूल हितकारी भी होते हैं, इसलिये उनका कड़ी रीतिसे आश्रय लें ॥४॥

संगं विमुच्य विजने वसंति गिरिगह्वरे ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्त्यै ज्ञानिनोऽन्यत्र निःस्पृहाः ॥५॥

अर्थः—जो मनुष्य ज्ञानी हैं, वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये अन्य समस्त पदार्थोंमें सर्वथा निस्पृह हो समस्त परिग्रहका त्याग कर देते हैं और एकान्त स्थान पर्वतकी गुफाओंमें जाकर रहते हैं ॥५॥

स्वल्पकार्यकृतौ चिंता महावज्रायते ध्रुवं ।
मुनीनां शुद्धचिद्रूपध्यानपर्वत भंजने ॥ ६ ॥

अर्थ :—जिस प्रकार वज्र, पर्वतको चूर्ण चूर्ण कर देता है उसी प्रकार जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपकी चिन्ता करनेवाला है, वह यदि अन्य किसी थोडेसे भी कार्यके लिये जरा भी चिन्ता कर बैठता है तो शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे सर्वथा विचलित हो जाता है ।

भावार्थः—शुद्धचिद्रूपका ध्यान उसी समय हो सकता है जिस समय किसी बातकी चिन्ता हृदयमें स्थान न पावे । यदि शुद्धचिद्रूपके ध्याते समय किसी प्रकारकी चिन्ता आ उपस्थित हुई तो वह ध्यान नष्ट ही हो जाता है, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि शुद्धचिदूपके ध्यान करते समय अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी भी चिन्ताको अपने हृदयमें जरा भी न पटकने दें ।६।

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानभानुरत्यंतनिर्मलः ।
जनसंगतिसंजातविकल्पाब्दैस्तिरोभवेत् ॥७॥

अर्थः—यह शुद्धचिद्रूपका ध्यानरूपी सूर्य, महानिर्मल और देदीप्यमान है । यदि इस पर स्त्री, पुत्र आदिके संसर्ग से उत्पन्न हुये विकल्परूपी मेधका पर्दा पड़ जायगा तो यह ढक ही जायगा ।

भावार्थः—स्त्री पुत्र आदिकी चिन्तायें शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें विघ्न करने वाली हैं । चिन्ता होते ही ध्यान सर्वथा उखड़ जाता है, इसलिये शुद्धचिद्रूपके ध्यानीको तनिक भी स्त्री–पुत्र आदि संबंधी चिन्ता न करनी चाहिये ।।७।।

अभव्ये शुद्धचिद्रूपध्यानस्य नोद्भवो भवेत् ।
वंध्यायां किल पुत्रस्य विषाणस्य खरे यथा ॥८॥

अर्थः—जिस प्रकार बांझके पुत्र नहीं होता और गधे के सींग नहीं होते, उसी प्रकार अभव्यके शुद्धचिद्रूपका ध्यान कदापि नहीं हो सकता ।

भावार्थ—अभव्यको मोक्ष, स्वर्ग आदिका श्रद्धान नहीं होता; किन्तु पित्तज्वर वालेको मीठा दूध भी जिस प्रकार कड़ुआ लगता है, उसी प्रकार अभव्यको भी सब धार्मिक बातें विपरीत ही भासती हैं । बांझके पुत्र और गधेके सींग होने जैसे असंभव हैं, उसी प्रकार अभव्यके चिद्रूपका ध्यान होना भी सर्वथा असंभव है ।। ८ ।।

दूरभव्यस्य नो शुद्धचिद्रूपध्यानसंरुचिः ।
यथाऽजीर्णविकारस्य न भवेदन्नसंरुचिः ॥९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—जिसको अजीर्णका विकार है—खाया-पीया नहीं पचता उसकी जिस प्रकार अन्नमें रुचि नहीं होती, उसी प्रकार जो दूरभव्य है उसकी भी शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें प्रीति नहीं हो सकती ॥ ९ ॥

भेदज्ञानं विना शुद्धचिद्रूपज्ञानसंभवः ।
भवेन्नैव यथा पुत्रसंभूतिर्जनकं विना ॥१०॥

अर्थः—जिस प्रकार कि पुरुषके बिना स्त्रीके पुत्र नहीं हो सकता, उसी प्रकार बिना भेदविज्ञानके शुद्धचिद्रूपका ध्यान भी नहीं हो सकता ।

भावार्थः—यह मेरी आत्मा शुद्धचैतन्यस्वरूप है और शरीर आदि पर तथा जड़ है, ऐसे ज्ञानका नाम भेदविज्ञान है । जब तक ऐसा ज्ञान नहीं होता तब तक शुद्धचिद्रूपका भी ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये शुद्धचिद्रूपके ज्ञानमें भेदविज्ञान प्रधान कारण है ॥ १० ॥

कर्मांगाखिलसंगे, निर्ममतामातरं विना ।
शुद्धचिद्रूप सद्ध्यान पुत्र सूतिर्न जायते ॥ ११ ॥

अर्थ:—जिस प्रकार बिना माताके पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता, उसीप्रकार कर्म द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त परिग्रहों-में ममता त्यागे बिना शुद्धचिद्रूपका ध्यान भी होना असंभव है अर्थात् पुत्रकी प्राप्तिमें जिस प्रकार माता कारण है, उसी प्रकार शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें स्त्री-पुत्र आदिमें निर्ममता (ये मेरे नहीं हैं ऐसा भाव) होना कारण है ॥ ११ ॥

तत्तस्य गतचिंता निर्जनताऽऽसन्न भव्यता ।
भेदज्ञानं परस्मिन्निर्ममता ध्यानहेतवः ॥१२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि चिन्ताका अभाव, एकान्त स्थान, आसन्न भव्यपना, भेदविज्ञान और दूसरे पदार्थोंमें निर्ममता ये शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें कारण हैं–बिना इनके शुद्धचिद्रूपका कदापि ध्यान नहीं हो सकता ।।१२।।

नृस्त्रीतिर्यग्सुराणां स्थितिगतिवचनं नृत्यगानं शुचादि
क्रीड़ा क्रोधादि मौनं भयहसनजरारोदनस्वापशूकाः ।
व्यापाराकाररोगं नुतिनतिकदनं दीनतादुःखशंकाः
श्रृंगारादीन् प्रपश्यन्निमिह भवे नाटकं मन्यते ज्ञः ॥१३॥

अर्थः—जो मनुष्य ज्ञानी है–संसारकी वास्तविक स्थितिका जानकार है वह मनुष्य, स्त्री, तिर्यंच और देवोंके स्थिति, गति, वचनको, नृत्य–गानको, शोक आदिको, क्रीड़ा, क्रोध आदि, मौनको, भय, हँसी, बुढापा, रोना, सोना, व्यापार, आकृति, रोग, स्तुति, नमस्कार, पीड़ा, दीनता, दुःख, शंका, भोजन और श्रृंगार आदिको संसारमें नाटकके समान मानता है ।

भावार्थः—जो मनुष्य अज्ञानी हैं वे तो मनुष्य, स्त्री, देव, देवांगना आदिके रहन–सहन आदिको अच्छा–बुरा समझते हैं । शोक और आनंद आदिके प्रसंग उपस्थित हो जाने पर दुःखी–सुखी हो जाते हैं; परन्तु ज्ञानीमनुष्य यह जानकर कि नाटकमें मनुष्य कभी राजा, कभी रंक और कभी स्त्री आदिका वेष धारण कर लेता है, उसी प्रकार इस जीवके कभी मनुष्य आदि पर्याय, कभी रोग–शोक और कभी सुख–दुःख सदा हुआ करते हैं–संसारका यह स्वभाव ही है, उसमें दुःख–सुख नहीं मानता ।। १३ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रींद्रयोः सदसि संस्थितयोः कृपास्या-
त्तद्भार्ययोरतिगुणान्वितयोर्घृणा च ।
सर्वोत्तमेंद्रियसुखस्मरणेऽतिकष्टं
यस्योद्भचेतसि स तत्त्वविद्रां वरिष्ठः ॥१४॥

अर्थः—जिस मनुष्यके हृदयमें, सभामें सिंहासन पर विराजमान हुये चक्रवर्ती और इन्द्रके ऊपर दया है, शोभामें रतिकी तुलना करने वाली इन्द्राणी और चक्रवर्तीकी पटरानीमें घृणा है और जिसे सर्वोत्तम इन्द्रियोंके सुखोंका स्मरण होते ही अति कष्ट होता है, वह मनुष्य तत्त्वज्ञानियोंमें उत्तम तत्त्वज्ञानी कहा जाता है ।

भावार्थः—ज्ञानीपुरुष यह जानकर कि चक्रवर्ती और इन्द्र आज सिंहासन पर बैठे हैं, कल अशुभकर्मके उदयसे मर कर कुगतिमें जायेंगे और लक्ष्मी नष्ट हो जायगी, उन पर दया करता है । यद्यपि चक्रवर्ती और इन्द्रकी स्त्रियां महा-मनोज्ञ होती हैं, तथापि विषयसम्बन्धी सुख महानिष्ट और दुःख देने वाला है, यह जानकर वह उनको घृणाकी दृष्टिसे देखता है और उत्तमोत्तम इन्द्रियोंके सुखोंको परिणाममें दुःखदायी समझ उनका स्मरण करते ही दुःख मान लेता है ॥१४॥

रम्यं वल्कलपर्णमंदिरकरीरं कांजिकं रामठं
लोहं ग्रावनिषादकुश्रुतमटेद् यावन्न यात्यंबरं ।
सौधं कल्पतरुं सुधां च तुहिनं स्वर्णं मणिं पंचमं
जैनीवाचमहो तथेंद्रियभवं सौख्यं निजात्मोद्भवं ॥१५॥

अर्थः—जब तक मनुष्यको उत्तमोत्तम वस्त्र, महल, कल्पवृक्ष, अमृत, कपूर, सोना, मणि, पंचमस्वर, जिनेन्द्र

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भगवानकी वाणी और आत्मीक सुख प्राप्त नहीं होते तभी तक वह वक्कल, पत्तेका (सामान्य) घर, करीर (बबूल), कांजी, हींग, लोहा, पत्थर, निषादस्वर, कुशास्त्र और इन्द्रियजन्य सुखको उत्तम और कार्यकारी समझता है; परन्तु उत्तम वस्त्र आदिके प्राप्त होते ही उसकी वक्कल आदिमें सर्वथा घृणा हो जाती है—उनको वह जरा भी मनोहर नहीं मानता ।

भावार्थः—मनुष्य जब तक नीची दशामें रहता है और हीन पदार्थोंसे संबंध रखता है तब तक वह उन्हींको लोकोत्तर मानता है; परन्तु जबकि वह उन्नत्त और उत्तम पदार्थोंका लाभ कर लेता है तो उसे वे हीन पदार्थ बिल्कुल बुरे लगने लगते हैं । उसी प्रकार जब तक यह आत्मा कर्मोंसे मलिन रहती है तब तक कर्मजनित पदार्थोंको ही उत्तम पदार्थ समझता है; परन्तु शुद्धात्माकी प्राप्ति होते ही उसे इन्द्रियजन्य सुखदायक भी पदार्थोंमें सर्वथा घृणा हो जाती है ।।१५।।

केचिद् राजादिवार्तां विषयरतिकलाकीर्तिरैप्राप्तिचिंतां
संतानोद्भूत्युपायं पशुनगविगवां पालनं चान्यसेवां ।
स्वापक्रीडौषधादीन् सुरनरमनसां रंजनं देहपोषं
कुर्वंतोऽस्यति कालं जगति च विरलाः स्वस्वरूपोपलब्धि ।१६।

अर्थः—संसारमें अनेक मनुष्य राजादिके गुणगान कर काल व्यतीत करते हैं । कई एक विषय, रति, कला, कीर्ति और धनकी चिन्तामें समय बिताते हैं और बहुतसे सन्तानकी उत्पत्तिका उपाय, पशु, वृक्ष, पक्षी, गौ, बैल आदिका पालन, अन्यकी सेवा, शयन, क्रीड़ा, औषधि आदिका सेवन, देव, मनुष्योंके मनका रंजन और शरीरका पोषण करते करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी समस्त आयुके कालको समाप्त कर देते हैं इसलिये जिनका समय स्वस्वरूप–शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें व्यतीत हो ऐसे मनुष्य संसारमें विरले ही हैं ।

भावार्थः—संसारमें मनुष्य अनेक प्रकारके होते हैं । कोई राजकथा करना अच्छा समझते हैं । कोई रात–दिन इस चिन्तामें लगे रहते हैं कि हमको विषयसुख, कला, कीर्ति और धन कैसे मिले ? अनेकोंकी यह कामना रहती है कि पुत्र कैसे हो ? इसलिये वे पुत्रकी उत्पत्तिके उपाय ही सोचते रहते हैं । कोई गौ, बैल आदि पशुओंके पालन करनेमें ही आनन्द मानते हैं । अनेक दूसरोंकी सेवा करना ही उत्तम समझते हैं । बहुतसे सोना, खेलना, औषधि आदिके सेवन करनेमें ही संतोष मानते हैं । किसी–किसी मनुष्यका चित्त इसी चिन्तासे व्याकुल रहा आता है कि अमुक देव या मनुष्य हमसे प्रसन्न रहे और अनेक मनुष्य अपने शरीरके ही भरण-पोषणमें लगे रहते हैं । सार यह है कि इनका समस्त जीवन इन्हीं कामोंमें व्यतीत होता रहता है, वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न नहीं कर सकते । इसलिये शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नितांत दुर्लभ है और उसको विरले ही मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं ॥१६॥

वाचांगेन हृदा शुद्धचिद्रूपोहमिति ब्रुवे ।
सर्वदानुभवामीह स्मरामीति त्रिधा भजे ॥१७॥

अर्थः—शुद्धचिद्रूपके विषयमें सदा यह विचार करते रहना चाहिये कि 'मैं शुद्धचिद्रूप हूँ' ऐसा मन–वचन–कायसे सदा कहता हूँ तथा अनुभव और स्मरण करता हूँ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—'मैं शुद्धचिद्रूप हूं' ऐसा प्रति समय कहनेसे, अनुभव और स्मरण करनेसे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये दृढ़ प्रवृत्ति होती चली जाती है—उत्साह कम नहीं होता, इसलिये शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये अवश्य विद्वानोंको ऐसा करते रहना चाहिये ।।१७।।

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानहेतुभूतां क्रियां भजेत् ।
सुधीः कांचिच्च पूर्वं तद्ध्याने सिद्धे तु तां त्यजेत् ।।१८।।

अर्थ :—जब तक शुद्धचिद्रूपका ध्यान सिद्ध न हो सके, तब तक विद्वानको चाहिये कि उसके कारण रूप क्रियाका अवश्य आश्रय लें; परन्तु उस ध्यानके सिद्ध होते ही उस क्रियाका सर्वथा त्याग कर दें ।

भावार्थ :—जिस प्रकार चित्रकला सीखनेका अभिलाषी मनुष्य पहिले रद्दी कागजों पर चित्र बनाना सीखता है, पश्चात् चित्रकलामें प्रवीण हो जाने पर रद्दी कागजों पर चित्र खींचना छोड़ उत्तम कागजों पर खींचने लग जाता है । उसी प्रकार जो मनुष्य प्रथम ही प्रथम शुद्धचिद्रूपका ध्यान करता है उसका मन स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये उसे ध्यानकी सिद्धिके लिये भगवानकी प्रतिमा आदि सामने रख लेनी चाहिये; परन्तु जिस समय ध्यान सिद्ध हो जाय उस समय उनकी कोई आवश्यकता नहीं, सर्वथा उनका त्याग कर देना चाहिये ।।१८।।

अंगस्यावयवैरंगमंगुल्याद्यैः परामृशेत् ।
मत्याद्यैः शुद्धचिद्रूपावयवैस्तं तथा स्मरेत् ।। १९ ।।

अर्थ :—जिस प्रकार शरीरके अवयव अंगुली आदिसे शरीरका स्पर्श किया जाता है, उसी प्रकार शुद्धचिद्रूपके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवयव जो मतिज्ञान आदि हैं उनसे उसका स्मरण करना चाहिये ।।१९।।

ज्ञेये दृश्ये यथा स्वे स्वे चित्तं ज्ञातरि दृष्टरि ।
दद्याच्चेन्ना तथा विंदेत्परं ज्ञानं च दर्शनं ॥ २० ॥

अर्थः—मनुष्य जिस प्रकार घट–पट आदि ज्ञेय और दृश्य पदार्थोंमें अपने चित्तको लगाता है, उसी प्रकार यदि वह शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये ज्ञाता और दृष्टा आत्मामें अपना चित्त लगावे तो उसे स्वस्वरूपका शुद्धदर्शन और ज्ञान शीघ्र हो प्राप्त हो जाय ।।२०।।

उपायभूतमेवात्र शुद्धचिद्रूपलब्धये ।
यत् किंचित्तत् प्रियं मेऽस्ति तदर्थित्वान्न चापरं ॥ २१ ॥

अर्थः—शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके इच्छुक मनुष्यको सदा ऐसा विचार करते रहना चाहिये कि जो पदार्थ शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें कारण है वह मुझे प्रिय है; क्योंकि मैं शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिका अभिलाषी हूँ और जो पदार्थ उसकी प्राप्तिमें कारण नहीं है, उससे मेरा प्रेम भी नहीं है ।।२१।।

चिद्रूपः केवलः शुद्ध आनन्दात्मेत्यहं स्मरे ।
मुक्त्यै सर्वज्ञोपदेशः श्लोकार्द्धेन निरूपितः ॥ २२ ॥

अर्थः—यह चिद्रूप, अन्य द्रव्योंके संसर्गसे रहित केवल है, शुद्ध है और आनन्द स्वरूप है, ऐसा मैं स्मरण करता हूँ; क्योंकि जो यह आधे श्लोकमें कहा गया भगवान सर्वज्ञका उपदेश है–वह ही मोक्षका कारण है ।।२२।।

बहिश्चितः पुरः शुद्धचिद्रूपाख्यानकं वृथा ।
अंधस्य नर्त्तनं गानं बधिरस्य यथा भुवि ॥ २३ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अंतश्चितः पुरः शुद्धचिद्रूपाख्यानकं हितं ।
बुभुक्षिते पिपासार्त्तेऽन्नं जलं योजितं यथा ॥ २४ ॥

अर्थः—जिस प्रकार अंधेके सामने नाचना और बहिरेके सामने गीत गाना व्यर्थ है, उसी प्रकार बहिरात्माके सामने शुद्धचिद्रूपकी कथा भी कार्यकारी नहीं है; परन्तु जिस प्रकार भूखेके लिये अन्न और प्यासेके लिये जल हितकारी है, उसी प्रकार अन्तरात्माके सामने कहा गया शुद्धचिद्रूपका उपदेश भी परम हित प्रदान करने वाला है ॥२३-२४॥

उपाया बहवः संति शुद्धचिद्रूपलब्धये ।
तद्ध्यानेन समो नाभूदुपायो न भविष्यति ॥ २५ ॥

अर्थः—अन्तमें ग्रन्थकार कहते हैं कि—यद्यपि शुद्ध-चिद्रूपकी प्राप्तिके बहुतसे उपाय हैं, तथापि उनमें ध्यानरूप उपायकी तुलना करने वाला न कोई उपाय हुआ है, न है और न होगा, इसलिये जिन्हें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिकी अभिलाषा हो उन्हें चाहिये कि वे सदा उसका ही नियमसे ध्यान करें ॥ २५ ॥

इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्त्युपायनिरूपणो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञानतरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिका उपाय वर्णन करने वाला तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौथा अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें सुगमताका वर्णन

न क्लेशो न धनव्ययो न गमनं देशांतरे प्रार्थना
केषांचिन्न बलक्षयो न न भयं पीडा परस्यापि न ।
सावद्यं न न रोग जन्मपतनं नैवान्यसेवा न हि
चिद्रूपस्मरणे फलं बहु कथं तन्नाद्रियंते बुधाः ॥ १ ॥

अर्थः—इस परमपावन चिद्रूपके स्मरण करनेमें न किसी प्रकारका क्लेश उठाना पड़ता है, न धनका व्यय, देशांतरमें गमन और दूसरेसे प्रार्थना करनी पड़ती है। किसी प्रकारकी शक्तिका क्षय, भय, दूसरेको पीड़ा, पाप, रोग, जन्म–मरण और दूसरेकी सेवाका दुःख भी नहीं भोगना पड़ता जबकि अनेक उत्तमोत्तम फलोंकी प्राप्ति भी होती है। अतः इस शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेमें हे विद्वानो! तुम क्यों उत्साह और आदर नहीं करते? यह नहीं जान पड़ता।

भावार्थ—संसारमें बहुतसे पदार्थ ऐसे हैं जिनकी प्राप्तिमें अनेक क्लेश भोगने पड़ते हैं, धन व्यय, दूसरे देशमें गमन, दूसरेसे प्रार्थना, शक्तिका क्षय, भय, दूसरोंको पीड़ा, नाना प्रकारके पाप, रोग, जन्म, मरण और अन्य सेवा आदि निकृष्ट कार्योंका भी सामना करना पड़ता है परन्तु शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें उपर्युक्त किसी बातका दुःख भोगना नहीं पड़ता इसलिये आत्मिकसुखके अभिलाषी विद्वानोंको चाहिये कि वे अचिंत्यसुख प्रदान करनेवाले इस शुद्धचिद्रूपका अवश्य स्मरण करें ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गमा भोगभूः स्वर्गभूमिर्विद्याधरावनिः ।
नागलोकधरा चातिसुगमा शुद्धचिद्धरा ॥ २ ॥
तत्साधने सुखं ज्ञानं मोचनं जायते समं ।
निराकुलत्वमभयं सुगमा तेन हेतुना ॥ ३ ॥

अर्थः—संसारमें भोगभूमि, स्वर्गभूमि, विद्याधरलोक और नागलोककी प्राप्ति तो दुर्गम–दुर्लभ है; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति अति सरल है क्योंकि चिद्रूपके साधनमें सुख, ज्ञान, मोचन, निराकुलता और भयका नाश ये साथ साथ होते चले जाते हैं और भोगभूमि आदिके साधनमें बहुत कालके बाद दूसरे जन्ममें होते हैं ।

भावार्थ :—भोगभूमि, स्वर्गभूमि, विद्याधरलोक और नागलोककी प्राप्ति संसारमें अति कष्टसाध्य है । हरएक मनुष्य भोगभूमि आदिकी प्राप्ति कर नहीं सकता और जो कर भी सकते हैं वे तप आदि आचरण करनेसे बहुत दिनोंके बाद, पर जन्ममें कर सकते हैं और तभी वे वहांका सुख भोग सकते हैं; परन्तु जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपके स्मरण और ध्यान करनेवाले हैं वे बिना ही किसी कष्टके साथ ही साथ उसका सुख भोग लेते हैं, उसे प्राप्त कर लेते हैं । इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपका स्मरण ध्यान अवश्य करें ॥२–३॥

अन्नाश्मागुरुनागफेनसदृशं स्पर्शेन तस्यांशतः
कौमाराम्रकसीसवारिसदृशं स्वादेन सर्वं वरं ।
गंधेनैव घृतादि वस्त्रसदृशं दृष्ट्या च शब्देन च
कर्कर्यादि च मानसेन च यथा शास्त्रादि निश्चीयते ॥ ४ ॥
स्मृत्या दृष्टनगाब्धिभूरुहपुरीतिर्यग्नराणां तथा
सिद्धांतोक्तसुराचलहृदनदीद्वीपादिलोकस्थितेः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थानां कृतपूर्वकार्यविततेः कालत्रयाणामपि
स्वात्मा केवलचिन्मयोऽशकलनात् सर्वोऽस्य निश्चीयते ॥५॥युग्मं॥

अर्थः—जिस प्रकार अन्न, पाषाण, अगरु और अफीमके समान पदार्थके कुछ भागके स्पर्श करनेसे, इलायची, आम, कसोस और जलके समान पदार्थके कुछ अंशके स्वादसे, घी आदिके समान पदार्थके कुछ अंशके सूंघनेसे, वस्त्र सरीखे पदार्थके किसी अंशको आंखसे देखनेसे कर्करी (झालर) आदिके शब्द श्रवणसे और मनसे शास्त्र आदिके समस्त स्वरूपका निश्चय कर लिया जाता है। उसीप्रकार पहिले देखे हुये पर्वत, समुद्र, वृक्ष, नगरी, गाय, भैंस आदि तिर्यंच और मनुष्योंके, शास्त्रोंसे जाने गये मेरु हृद, तालाब, नदी और द्वीप आदि लोककी स्थितिके, पहिले अनुभूत इन्द्रियोंके विषय और किये गये कार्योंके एवं तीनों कालोंके स्मरण आदि कुछ अंशोंसे अखण्ड चैतन्यस्वरूपके पिंडस्वरूप इस आत्माका भी निश्चय कर लिया जाता है।

भावार्थः—जिस प्रकार पाषाण, इलायची, घी, झालर आदि पदार्थोंके समान पदार्थोंमें पाषाण आदिके समान ही स्पर्श, रस, गंध आदि गुण रहते हैं, इसलिये उनके स्पर्श, रस, गन्ध व शब्द आदि किसी अंशसे उनके समस्त स्वरूपका निश्चय कर लिया जाता है। उसीप्रकार यह आत्मा भी मतिज्ञान, स्मृतिज्ञान आदि चेतनाओंके पिंडस्वरूप है; क्योंकि इसे पहिले देखे पर्वत, समुद्र, वृक्ष आदि पदार्थोंका स्मरण होता है। शास्त्रमें वर्णन किये मेरु हृद, नदी आदिके स्वरूपको यह जानता है। पहिले अनुभूत इन्द्रियोंके विषय और किये गये कामोंका भी इसे स्मरण रहता है, भूत, भविष्यत व वर्तमान तीनों कालोंको भी भले प्रकार जानता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । इसलिये स्मरण आदि कुछ अंशोंके निश्चयसे इसके ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदि समस्त स्वरूपका निश्चय हो जाता है; क्योंकि स्मृति आदि अंश सिवा इसके दूसरे किसी पदार्थमें नहीं रहते ।। ४–५ ।।

द्रव्यं क्षेत्रं च कालं च भावमिच्छेत् सुधीः शुभं ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्ति हेतुभूतं निरंतरं ॥ ६ ॥
न द्रव्येन न कालेन न क्षेत्रेण प्रयोजनं ।
केनचिन्नैव भावेन लब्धे शुद्धचिदात्मके ॥ ७ ॥

अर्थः—जो महानुभाव शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे उसकी प्राप्तिके अनुपम कारण शुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका सदा आश्रय करें; परन्तु जिससमय शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हो जाय उस समय द्रव्य, काल, भावके आश्रय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं ।

भावार्थः—कोलाहलपूर्ण और अशुभ द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावके आश्रयसे कभी भी शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये उसके इच्छुक विद्वानोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये शुभ किन्तु अनुकूल द्रव्य, क्षेत्र, काल व भावका आश्रय करें । हाँ जब शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हो जाय, तब शुभ द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके आश्रय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं ।। ६–७ ।।

परमात्मा परंब्रह्म चिदात्मा सर्वदृक् शिवः ।
नामानीमान्यहो शुद्धचिद्रूपस्यैव केवलं ॥ ८ ॥

अर्थः—परमात्मा, परब्रह्म, चिदात्मा, सर्वदृष्टा और शिव, अहो ! ये समस्त नाम उसी शुद्धचिद्रूपके हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—शुद्धचिद्रूप समस्त कर्मोसे रहित हो गया है। इसलिये वह परमात्मा और परब्रह्म है, ज्ञान-दर्शन आदि चेतनाओंका पिंडस्वरूप है इसलिये चिदात्मा-चैतन्यस्वरूप है, समस्त पदार्थोका देखनेवाला है इसलिये सर्वदृक् सर्वदृष्टा है और कल्याण स्वरूप है इसलिये शिव है ॥ ८ ॥

मध्ये श्रुताब्धेः परमात्मनामरत्नव्रजं वीक्ष्य मया गृहीतं ।
सर्वोत्तमत्वादिदमेव शुद्धचिद्रूपनामातिमहार्घ्यरत्नं ॥ ९ ॥

अर्थः—जैन शास्त्र एक अपार सागर है और उसमें परमात्माके नामरूपी अनन्त रत्न भरे हुये हैं, उनमेंसे भले प्रकार परीक्षा कर और सबोंमें अमूल्य उत्तम मान यह शुद्धचिद्रूपका नामरूपी रत्न मैंने ग्रहण किया है।

भावार्थः—जिस प्रकार रत्नाकर-समुद्रमें अनन्त रत्न विद्यमान रहते हैं और उनमेंसे किसी एक सार व उत्तम रत्नको ग्रहण कर लिया जाता है। उसीप्रकार जैनशास्त्रमें भी परंब्रह्म, परमात्मा, शुद्धचिद्रूप आदि अगणित परमात्माके नाम उल्लेखित हैं, उनमेंसे मैंने 'शुद्धचिद्रूप', इस नामको उत्तम और परम प्रिय मान ग्रहण किया है और इसी नामका मनन व ध्यान करना उत्तम समझा है ॥ ९ ॥

नाहं किंचिन्न मे किंचिद् शुद्धचिद्रूपकं विना ।
तस्मादन्यत्र मे चिंता वृथा तत्र लयं भजे ॥ १० ॥

अर्थः—संसारमें सिवाय शुद्धचिद्रूपके न तो मैं कुछ हूँ और न अन्य ही कोई पदार्थ मेरा है इसलिये शुद्धचिद्रूपसे अन्य किसी पदार्थमे मेरा चिन्ता करना वृथा है; अतः मैं शुद्धचिद्रूपमें ही लीन होता हूँ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भावार्थः—मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ । मुझसे अन्य समस्त पदार्थ जड़ हैं । जड़ और चेतनमें अति भेद है । कभी जड़ चेतन नहीं हो सकता और चेतन जड़ नहीं हो सकता । इसलिये मुझे जड़को अपनाना और उसकी चिंता नहीं करना व्यथा है; अतः मैं मेरे शुद्ध आत्मस्वरूपमें ही तल्लीन होता हूँ—एकाग्र होता हूँ ।। १० ।।

अनुभूय मया ज्ञातं सर्वं जानाति पश्यति ।
अयमात्मा यदा कर्मप्रतिसीरा न विद्यते ।। ११ ।।

अर्थः—जिस समय कर्मरूपी परदा इस आत्माके ऊपर से हट जाता है, उस समय यह समस्त पदार्थोंको साक्षात् जान–देख लेता है । यह बात मुझे अनुभवसे मालूम पड़ती है ।

भावार्थः—यह आत्मा अनादिकालमें संसारमें रुल रहा है और कर्मोंसि आवृत होनेके कारण इसे बहुत ही अल्प ज्ञान होता है; परन्तु जिस समय कर्मोंका आवरण हट जाता है उस समय यह समस्त पदार्थोंको हाथकी रेखाके समान स्पष्टरूपसे देख जान लेता है यह बात अनुभवसिद्ध है ।।११।।

विकल्प जालजंबालान्निर्गतोऽयं सदा सुखी ।
आत्मा तत्र स्थितो दुःखीत्यनुभूय प्रतीयतां ।। १२ ।।

अर्थः—जब तक यह आत्मा नाना प्रकारके संकल्प विकल्परूपी शेवाल (काई)में फँसा रहता है, तब तक यह सदा दुःखी बना रहता है—क्षण भरके लिये भी इसे सुख-शांति नहीं मिलती; परन्तु जब इसके संकल्प–विकल्प छूट जाते हैं; उस समय यह सुखी हो जाता है—निराकुलतामय सुखका अनुभव करने लग जाता है, ऐसा स्वानुभवसे निश्चय होता है ।।१२।।

अनुभूत्या मया बुद्धमयमात्मा महाबली ।
लोकालोकं यतः सर्वमंतर्नयति केवलः ।। १३ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—यह शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा अचिंत्य शक्तिका धारक है, ऐसा मैंने भले प्रकार अनुभवकर जान लिया है; क्योंकि यह अकेला ही समस्त लोक-अलोकको अपनेमें प्रविष्ट कर लेता है ।

भावार्थः—जिसके ज्ञानमें अनन्तप्रदेशी लोक–अलोक दोनों प्रविष्ट हो जाते हैं—जो लोकाकाश–अलोकाकाश दोनोंको स्पष्टरूपसे जानता है, ऐसा यह आत्मा है । इसलिये यह अचिंत्य शक्तिका धारक है । अन्य किसी पदार्थमें ऐसी सामर्थ्य नहीं जो कि इस आत्माकी तुलना कर सके ।। १३ ।।

स्मृतिमेति यतो नादौ पश्चादायाति किंचिन ।
कर्मोदयविशेषोऽयं ज्ञायते हि चिदात्मनः ॥ १४ ॥
विस्फुरेन्मानसे पूर्वं पश्चान्नायाति चेतसि ।
किंचिद्वस्तु विशेषोऽयं कर्मणः किं न बुध्यते ॥ १५ ॥

अर्थः—यदि यह चैतन्यस्वरूप आत्मा किसी पदार्थका स्मरण करता है तो पहिले वह पदार्थ उसके ध्यानमें जल्दी प्रविष्ट नहीं होता; परन्तु एकाग्र हो जब यह बार-बार ध्यान करता है तब उसका कुछ-कुछ स्मरण हो आता है । इसलिये इससे ऐसा जान पड़ता है कि यह आत्मा कर्मोंसे आवृत है । तथा पहिले पहिल यदि किसी पदार्थका स्मरण भी हो जाय तो उसके जरा ही विस्मरण हो जाने पर फिर बार बार स्मरण करने पर भी उसका स्मरण नहीं आता, इसलिये आत्मा पर कर्मोंकी माया जान पड़ती है अर्थात् आत्मा कर्मके उदयसे अवनृत है यह स्पष्ट जान पड़ता है ।

भावार्थः—यदि शुद्धनिश्चयनयसे देखा जाय तो भूत, भविष्यत व वर्तमान तीनोंकालकी पर्यायोंको हाथकी रेखाके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समान देखना-जानना इस आत्माका स्वभाव है। तथापि यह देखनेमें आता है कि यह बहुत थोड़े पदार्थोंको जानता-देखता है एवं पहले देखे-सुने किसी एक पदार्थका स्मरण कर सकता है और किसी एकका नहीं। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि कोई न कोई विरोधी पदार्थ अवश्य इसकी शक्तिका रोकने वाला है और वह शुभ-अशुभ कर्म ही है ॥ १४-१५ ॥

सर्वेषामपि कार्याणां शुद्धचिद्रूपचिंतनं ।
सुखसाध्यं निजाधीनत्वादीहामुत्र सौख्यकृत् ॥ १६ ॥

अर्थः—संसारके समस्त कार्योंमें शुद्धचिद्रूपका चिन्तन, मनन व ध्यान करना ही सुखसाध्य-सुखसे सिद्ध होनेवाला है; क्योंकि यह निजाधीन है। इसकी सिद्धिमें अन्य किसी पदार्थकी अपेक्षा नहीं करनी पड़ती और इससे इस लोक और परलोक दोनों लोकोंमें निराकुलतामय सुखकी प्राप्ति होती है ॥ १६ ॥

प्रोद्यन्मोहाद् यथा लक्ष्म्यां कामिन्यां रमते च हृत् ।
तथा यदि स्वचिद्रूपे किं न मुक्तिः समीपगा ॥ १७ ॥

अर्थः—मोहके उदयसे मत्त जीवका मन जिस प्रकार संपत्ति और स्त्रियोंमें रमण करता है, उसीप्रकार यदि वही मन (उनसे उपेक्षा कर) शुद्धचिद्रूपकी ओर झुके—उससे प्रेम करे, तो देखते देखते ही इस जीवको मोक्षकी प्राप्ति हो जाय।

भावार्थः—मन चाहता तो यह है कि मुझे सुख मिले, परन्तु सुखका उपाय कुछ नहीं करता। उल्टा महाबलवान मोहनीय कर्मके फंदेमें फँसकर कभी धन उपार्जन करता है और कभी स्त्रियोंके साथ रमण करता फिरता है। यदि यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धचिद्रूपकी चिन्ता करे तो बहुत ही शीघ्र इसे मोक्षसुख मिल जाय ।। १७ ।।

विमुच्च शुद्धचिद्रूपचिंतनं ये प्रमादिनः ।
अन्यत् कार्यं च कुर्वंति ते पिबंति सुधां विषं ।। १८ ।।

अर्थः—जो आलसी मनुष्य सुख-दुःख और उनके कारणोंको भले प्रकार जानकर भी प्रमादके उदयसे शुद्धचिद्रूपकी चिन्ता छोड़ अन्य कार्य करने लग जाते हैं, वे अमृतको छोड़कर महा दुःखदायी विषपान करते हैं । इसलिये तत्त्वज्ञोंको शुद्धचिद्रूपका सदा ध्यान करना चाहिये ।। १८ ।।

विषयानुभवे दुःखं व्याकुलत्वात् सतां भवेत् ।
निराकुलत्वतः शुद्धचिद्रूपानुभवे सुखं ।। १९ ।।

अर्थः—इन्द्रियोंके विषय भोगनेमें जीवोंका चित्त सदा व्याकुल बना रहता है, इसलिये उन्हें अनन्त क्लेश भोगने पड़ते हैं । शुद्धचिद्रूपके अनुभवमें किसी प्रकारकी आकुलता नहीं होती, इसलिये उसकी प्राप्तिसे जीवोंका परम कल्याण होता है ।। १९ ।।

रागद्वेषादिजं दुखं शुद्धचिद्रूपचिंतनात् ।
याति तच्चिंतनं न स्याद् यतस्तद्गमनं विना ।। २० ।।

अर्थः—राग-द्वेष आदिके कारणसे जीवोंको अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूपका स्मरण करते ही वे पलभरमें नष्ट हो जाते हैं—ठहर नहीं सकते; क्योंकि बिना रागादिके दूर हुये शुद्धचिद्रूपका ध्यान ही नहीं हो सकता ।। २० ।।

आनन्दो जायतेत्यन्तः शुद्धचिद्रूपचिंतने ।
निराकुलत्वरूपो हि सतां यत्तन्मयोऽस्त्यसौ ।। २१ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—निराकुलतारूप (किसी प्रकारकी आकुलता न होना) आनन्द है और इस आनन्दकी प्राप्ति सज्जनोंको शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे ही हो सकती है; क्योंकि यह शुद्धचिद्रूप आनन्दमय है—आनन्दमयपदार्थ इससे भिन्न नहीं है ।। २१ ।।

तं स्मरन् लभते ना तमन्यदन्यच्च केवलं ।
याति यस्य पथा पांथस्तदेव लभते पुरं ॥ २२ ॥

अर्थः—जिस प्रकार पथिक मनुष्य जिस गांवके मार्गको पकड़कर चलता है वह उसी गांवमें पहुँच जाता है, अन्य गांवके मार्गसे चलनेवाला अन्य गांवमें नहीं । उसीप्रकार जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपका स्मरण ध्यान करता है, वह शुद्धचिद्रूपको प्राप्त करता है और जो धन आदि पदार्थोंकी आराधना करता हैं, वह उनकी प्राप्ति करता है; परन्तु यह कदापि नहीं हो सकता कि अन्य पदार्थोंका ध्यान करे और शुद्धचिद्रूपको पा जाय ।। २२ ।।

शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिर्दुर्गमा मोहतोऽगिनां ।
तज्जयेऽत्यंत सुगमा क्रियाकांडविमोचनात् ॥ २३ ॥

अर्थः—यह मोहनीय कर्म महाबलवान है । जो जीव इसके जालमें जकड़े हैं उन्हें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति दुःसाध्य है और जिन्होंने इसे जीत लिया है उन्हें तप आदि क्रियाओंके बिना ही सुलभतासे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हो जाती है ।।२३।।

इति मुमुक्षु भट्टारक श्री ज्ञानभूपणविरचितायां तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्तिसुगमत्वप्रतिपादको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञान-तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिको सुगम बतलानेवाला चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवाँ अध्याय

'शुद्धचिद्रूपके पहले कभी भी प्राप्ति नहीं हुई'
—इस बातका वर्णन

रत्नानामौषधीनां वसनररुजामन्नधातूपलानां
स्त्रीभाश्वयानां नराणां जलचरवयसां गोमहिष्यादिकानां ।
नामोत्पत्त्यर्घतार्थान् विशद्मतितया ज्ञातवान् प्रायशोऽहं
शुद्धचिद्रूपमात्रं कथमहह निजं नैव पूर्वं कदाचित् ॥ १ ॥

अर्थः—मैंने पहिले कई बार रत्न, औषधि, वस्त्र, घी आदि रस, रोग, अन्न, सोना-चांदी आदि धातु, पाषाण, स्त्री, हस्ती, घोड़े, मनुष्य, मगरमच्छ आदि जलके जीव, पक्षी और गाय, भेंस आदि पदार्थोंके नाम, उत्पत्ति, मूल्य और प्रयोजन भले प्रकार अपनी विशद बुद्धिसे जान–सुन लिये हैं; परन्तु जो निज शुद्धचिद्रूप नित्य है, आत्मिक है उसे आज तक कभी पहिले नहीं जाना है ।

भावार्थः—मैं अनादिकालसे इस संसारमें घूम रहा हूँ । मुझसे संसारमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं बचा जिसका मैने नाम न जाना हो, उसकी उत्पत्तिके कारण, मूल्य और प्रयोजन न पहिचाने हो; परन्तु एक निज शुद्धचिद्रूप नामका पदार्थ ऐसा बच गया है, जिसका न मैंने कभी नाम सुना, न इसकी प्राप्तिके उपाय सोचे और न इसका प्रयोजन ही पहिचाना । इसलिये यह मेरे लिये अपूर्व पदार्थ है ।। १ ।।

पूर्वं मया कृतान्येव चिंतनान्यप्यनेकशः ।
न कदाचिन्महामोहात् शुद्धचिद्रूपचिंतनं ।। २ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :—पहिले मैंने अनेक वार अनेक पदार्थोंका मनन ध्यान किया है: परन्तु पुत्र स्त्री आदिके मोहसे मूढ़ हो, शुद्धचिद्रूपका कभी आज तक चितवन न किया ।।२।।

अनन्तानि कृतान्येव मरणानि मयापि न ।
कुत्रचिन्मरणे शुद्धचिद्रूपोऽहमिति स्मृतं ॥ ३ ॥

भावार्थ :—मैं अनन्तबार अनन्त भवोंमें मरा; परन्तु मृत्युके समय " मैं शुद्धचिद्रूप हूँ " ऐसा स्मरण कर कभी न मरा ।।३।।

सुरद्रुमा निधानानि चिंतारत्नं द्युसद्गवी ।
लब्धा च न परं पूर्वं शुद्धचिद्रूपसंपदा ॥ ४ ॥

अर्थ :—मैंने कल्पवृक्ष, खजाने, चिन्तामणिरत्न और कामधेनु आदि लोकोत्तर अनन्य विभूतियाँ प्राप्त कर लीं; परन्तु अनुपम शुद्धचिद्रूप नामकीं संपत्ति आज तक कभी नहीं पाई ।। ४ ।।

द्रव्यादिपंचधा पूर्वं परावर्त्ता अनन्तशः ।
कृतास्तेष्वेकशो न स्वं स्वरूपं लब्धवानहं ॥ ५ ॥

अर्थः—मैंने अनादिकालसे इस संसारमें परिभ्रमण किया । इसमें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव नामक पाँचों परिवर्तन भी अनेक बार पूरे किये; परन्तु स्वस्वरूप शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति मुझे आज तक एक बार भी न हुई ।।५।।

इन्द्रादीना पदं लब्धं पूर्वं विद्याधरेशिनां ।
अनन्तशोऽहमिंद्रस्य स्वस्वरूपं न केवलं ॥ ६ ॥

अर्थ :—मैंने पहिले अनेक बार इन्द्र, नृपति आदि उत्तमोत्तम पद भी प्राप्त किये । अनन्तबार विद्याधरोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी और अहमिंद्र भी हुआ; परन्तु आत्मिकरूप–शुद्धचिद्रूपका लाभ न कर सका ।।६।।

मध्ये चतुर्गतीनां च बहुशो रिपवो जिताः ।
पूर्वं न मोहप्रत्यर्थी स्वस्वरूपोपलब्धये ।। ७ ।।

अर्थ :—नरक, मनुष्य, तिर्यंच और देव चारों गतियोंमें भ्रमणकर मैंने अनेकबार अनेक शत्रुओंको जीता; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये उसके विरोधी महाबलवान मोहरूपी बैरीको कभी नहीं जीता ।।७।।

मया निःशेषशास्त्राणि व्याकृतानि श्रुतानि च ।
तेभ्यो न शुद्धचिद्रूपं स्वीकृतं तीव्रमोहिना ।। ८ ।।

अर्थ :—मैंने संसारमें अनंतबार कठिनसे कठिन भी संपूर्ण शास्त्रोंका व्याख्यान किया, अर्थ किया और बहुतसे शास्त्रोंका श्रवण भी किया; परन्तु मोहसे मूढ़ हो उनमें जो शुद्धचिद्रूपका वर्णन है, उसे कभी स्वीकार न किया ।।८।।

वृद्धसेवा कृता विद्वन्महतां सदसि स्थितः ।
न लब्धं शुद्धचिद्रूपं तत्रापि भ्रमतो निजं ।। ९ ।।

अर्थ :—इस संसारमें भ्रमण कर मैंने कई बार वृद्धोंकी सेवा की व विद्वानोंकी बड़ी–बड़ी सभाओंमें भी बैठा; परन्तु अपने निज शुद्धचिद्रूपको कभी मैंने प्राप्त नहीं किया ।।९।।

मानुष्यं बहुशो लब्धमार्ये खंडे च सत्कुलं ।
आदिसंहननं शुद्धचिद्रूपं न कदाचन ।। १० ।।

अर्थ :—मैं आर्यखंडमें बहुतवार मनुष्य हुआ, कई बार उत्तम कुलमें भी जन्म पाया; वज्रवृषभनाराच सहनन भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कई बार पाया; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी मुझे कभी भी प्राप्ति न हुई ॥१०॥

शौचसंयमशीलानि दुर्धराणि तपांसि च ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानमंतरा धृतवानहं ॥ ११ ॥

अर्थ :—मैंने अनंतबार शौच, संयम व शीलोंको धारण किया, भांति भांतिके घोरतम तप भी तपे; परन्तु शुद्धचिद्रूपका कभी ध्यान नहीं किया ॥११॥

एकेन्द्रियादिजीवेषु पर्याया: सकला धृता: ।
अजानता स्वचिद्रूपं परस्पर्शादि जानता ॥ १२ ॥

अर्थ :—मैं अनेक बार एकेंद्रिय, दो–इंद्रिय, ते–इन्द्रिय, चौ–इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय हुआ । एकेन्द्रिय आदिमें वृक्ष आदि अनंत पर्यायोंको धारण किया, दूसरेके स्पर्श, रस, गंध आदिको भी जाना; परन्तु स्वस्वरूपचिद्रूपको आज तक न पाया, न पहिचाना ॥१२॥

ज्ञातं दृष्टं मया सर्वं सचेतनमचेतनं ।
स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं न कदाचिच्च केवलं ॥ १३ ॥

अर्थ :—मैंने संसारमें चेतन–अचेतन समस्त पदार्थोंको भले प्रकार देखा–जाना; परन्तु केवल शुद्धचिद्रूप नामक एक पदार्थको कभी मैंने न जाना न देखा ॥ १३ ॥

लोकज्ञाति श्रुतसुरनृपति श्रेयसां भामिनीनां
यत्यादीनां व्यवहृतिमखिलां ज्ञातवान् प्रायशोऽहं ।
क्षेत्रादीनामशकलजगतो वा स्वभावं च शुद्ध-
चिद्रूपोऽहं ध्रुवमिति न कदा संसृतौ तीव्रमोहात् ॥ १४ ॥

अर्थ:—संसारमें लोक, ज्ञाति, शास्त्र, देव और राजाओंकी विभूतियोंको, कल्याण, स्त्रियों और मुनि आदिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त व्यवहारको कईबार मैंने जाना; क्षेत्र, नदी, पर्वत आदि खंड और समस्त जगतके स्वभावको भी पहिचाना परन्तु मोहकी तीव्रतासे "मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" इस बातको मैं निश्चय रूपसे कभी न जान पाया।

भावार्थः—देखनेमें आता है कि संसारमें प्रायः मनुष्य लोकको विभूति और जाति आदिके गौरवको उत्तम समझते हैं और उसीको हितकारी मान उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करते हैं परन्तु मैंने इन सबको भले प्रकार–जान–देख और प्राप्त कर लिया किन्तु अभी तक मुझे केवल शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति कभी नहीं हुई ॥ १४ ॥

शीतकाले नदीतीरे वर्षाकाले तरोरधः ।
ग्रीष्मे नगशिरोदेशे स्थितो न स्वे चिदात्मनि ॥ १५ ॥

अर्थः—बहुत बार मैं शीतकालमें नदीके किनारे, वर्षा कालमें वृक्षके नीचे और ग्रीष्म ऋतुमें पर्वतकी चोटियों पर स्थित हुआ; परन्तु अपने चैतन्यस्वरूप आत्मामें मैंने कभी स्थिति न की ॥१५॥

विहितो विविधोपायैः कायक्लेशो महत्तमः ।
स्वर्गादिकांक्षया शुद्धं स्वस्वरूपमजानता ॥ १६ ॥

अर्थ :—"मुझे स्वर्ग आदि सुखकी प्राप्ति हो" इस अभिलाषासे मैंने अनेक प्रयत्नोंसे घोरतम भी कायक्लेश तप भी तपे परन्तु शुद्धचिद्रूपको ओर जरा भी ध्यान न दिया–स्वर्ग चक्रवर्ती आदिके सुखके सामने मैंने शुद्धचिद्रूप सुखको तुच्छ समझा ॥ १६ ॥

अधीतानि च शास्त्राणि बहुवारमनेकशः ।
मोहतो न कदा शुद्धचिद्रूपप्रतिपादकं ॥ १७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :—मैंने बहुत बार अनेक शास्त्रोंको पढ़ा परन्तु मोहसे मत्त हो शुद्धचिद्रूपका स्वरूप समझानेवाला एक भी शास्त्र न पढ़ पाया ।। १७ ।।

न गुरुः शुद्धचिद्रूपस्वरूपप्रतिपादकः ।
लब्धो मन्ये कदाचित्तं विनाऽसौ लभ्यते कथं ॥ १८ ॥

अर्थ :—शुद्धचिद्रूपका स्वरूप प्रतिपादन करनेवाले आज तक मुझे कोई गुरु नहीं मिले और जब गुरु ही कभी नहीं मिले तब शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हो ही कैसे सकती थी । अर्थात् शुद्धचिद्रूपके स्वरूपके मर्मज्ञ गुरुके बिना शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति सर्वथा दुःसाध्य है ।। १८ ।।

सचेतने शुभे द्रव्ये कृता प्रीतिरचेतने ।
स्वकीये शुद्धचिद्रूपे न पूर्वं मोहिना मया ॥ १९ ॥

अर्थ :—अतिशय मोही होकर मैंने सजीव व अजीव शुभद्रव्योंमें प्रीति की, परन्तु आत्मिक शुद्धचिद्रूपमें कभी प्रेम न किया ।

भावार्थः—मुनि आदि शुभ चेतनद्रव्योंमें और भगवानकी प्रतिमा आदि शुभ अचेतन द्रव्योंमें मैंने गाढ़ प्रेम किया परन्तु ये परद्रव्य होनेसे मेरी अभीष्ट सिद्धि न कर सके क्योंकि मेरे अभीष्टकी सिद्धि आत्मिक शुद्धचिद्रूपमें प्रेम करने से ही हो सकती थी, सो उसमें मैंने कभी प्रेम न किया ।। १९ ।।

दुष्कराण्यपि कार्याणि हा शुभान्यशुभानि च ।
बहूनि विहितानीह नैव शुद्धात्मचिंतनं ॥ २० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अर्थ :—इस संसारमें मैंने कठिनसे कठिन भी शुभ और अशुभ कार्य किये परन्तु आजतक शुद्धचिद्रूपकी कभी चिंता न की ॥२०॥

पूर्वं या विहिता क्रिया किल महामोहोदयेनाखिला
मूढत्वेन मयेह तत्र महतीं प्रीतिं समातन्वता ।
चिद्रूपाभिरतस्य भाति विषवत् सा मन्दमोहस्य मे
सर्वस्मिन्नाधुना निरीहमनसोऽतोधिग् विमोहोदयं ॥ २१ ॥

अर्थ :—सांसारिक बातोंमें अतिशय प्रीतिको करानेवाले मोहनीय कर्मके उदयसे मूढ़ बन जो मैंने पहिले समस्त कार्य किये हैं वे इस समय मुझे विष सरीखे दुःखदायी जान पड़ रहे हैं; क्योंकि इस समय मैं शुद्धचिद्रूपमें लीन हो गया हूँ। मेरा मोह मंद हो गया है और सब बातोंसे मेरी इच्छा हट गई है, इसलिये इस मोहनीय कर्मके उदयके लिये सर्वथा धिक्कार है ।

भावार्थः—जब तक मैं मूढ़ था हित और अहितको जरा भी नहीं पहिचानता था तब तक मोहके उदयसे मैं जिस कामको करता था उसे बहुत अच्छा मानता था परन्तु जब मैं शुद्धचिद्रूपमें लीन हुआ, मेरा मोह मन्द हुआ, और समस्त ऐहिक पदार्थोंसे मेरी इच्छा हटी तो मोहके उदयसे किये वे समस्त कार्य मुझे विष सरीखे मालूम होने लगे–जरा भी उनमें मेरा प्रेम न होने लगा इसलिये इस मोहनीय कर्मके लिये सर्वथा धिक्कार है ॥ २ ॥

व्यक्ताव्यक्तविकल्पानां वृन्दैरापूरितो भृशं ।
लब्धस्तेनावकाशो न शुद्धचिद्रूप चिंतने ॥ २२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—व्यक्त और अव्यक्त दोनों प्रकारके विकल्पोंसे मैं सदा भरा रहा, इसलिये आज तक मुझे शुद्धचिद्रूपके चितवन करनेका कभी भी अवकाश नहीं मिला ।। २२ ।।

इति मुमुक्षुभट्टारकज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्णां शुद्धचिद्रूपस्य पूर्वालब्धिप्रतिपादकः पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारकज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी पूर्वमें प्राप्ति न होनेका वर्णन करनेवाला पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छठा अध्याय

शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें निश्चलताका वर्णन

जानंति ग्रहिलं हतं ग्रहगणैर्ग्रस्तं पिशाचैरुजा
मग्नं भूरि परीषहैर्विकलतां नीतं जराचेष्टितं ।
मृत्यासन्नतया गतं विकृतितां चेद् भ्रांतिमन्तं परे
चिद्रूपोऽहमिति स्मृतिप्रवचनं जानंतु मामंगिनः ॥ १ ॥

अर्थः—चिद्रूपकी चिन्तामें लीन मुझे अनेक मनुष्य—वावला, खोटे ग्रहोंसे और पिशाचोंसे ग्रस्त, रोगोंसे पीड़ित, भांति–भांतिके परीषहोंसे विकल, बुड्ढा, वहुत जल्दी मरनेवाला होनेके कारण विकृत और ज्ञान शून्य हो घूमने वाला जानते हैं सो जानो परन्तु मैं ऐसा नहीं हूँ क्योंकि मुझे इस बातका पूर्ण निश्चय है कि मैं शुद्धचित्स्वरूप हूँ ।

भावार्थः—मैं शुद्धचित्स्वरूप हूँ ऐसा पूर्ण निश्चय हो जानेसे जब मैं उसकी प्राप्तिके लिये उपाय करता हूँ और ऐहिक कृत्योंसे सम्बन्ध छोड़ देता हूँ उस समय बहुतसे मनुष्य मुझे उदासीन जान पागल कहते हैं । कोई कहता है इस पर खोटे ग्रहोंने कोप किया है । वहुतसे कहते हैं यह किसी पिशाचके झपटमें आ गया है । अनेक कहते हैं इसे कुछ रोग हो गया है । बहुतसे कहते हैं परीषह सहते सहते यह व्याकुल हो गया है । एक कहता है, अजी, वह बुड्ढा हो गया है इसलिये इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, दूसरा कहता है अभी इसकी मृत्यु बिल्कुल समीप है इसलिये इसे कुछ विकार हो गया है और अनेक कहते हैं यह व्यर्थ मुंह उठाये घूमता फिरता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु ऐसा कहनेसे मेरा कोई नुकसान नहीं होता क्योंकि ये मनुष्य अज्ञानी हैं—हित-अहितको जरा भी न पहिचाननेवाले हैं। मुझे तो इस बातका पूर्ण निश्चय है कि मैं शुद्धचैतन्य-स्वरूप हूँ ॥ १ ॥

उन्मत्तं भ्रांतियुक्तं गतनयनयुगं दिग्विमूढं च सुप्तं
निश्चिंतं प्राप्तमूर्च्छं जलवहनगतं बालकावस्थमेतत् ।
स्वस्याधीनं कृतं वा ग्रहिलगतिगतं व्याकुलं मोहधूर्त्तैः
सर्वं शुद्धात्मदृग्भीरहितमपि जगद् भाति भेदज्ञचित्ते ॥२॥

अर्थः—जिस समय स्व और परका भेद-विज्ञान हो जाता है उस समय शुद्धात्मदृष्टिसे रहित यह जगत चित्तमें ऐसा जान पड़ने लगता है मानों यह उन्मत्त और भ्रान्त है। इसके दोनों नेत्र बन्द हो गये हैं यह दिग्विमूढ़ हो गया है। गाढ़ निद्रामें सो रहा है। मन रहित असैनी मूर्च्छासे बेहोश और जलके प्रवाहमें बहा चला जा रहा है। बालकके समान अज्ञानी है। मोहरूपी धूर्तोंने व्याकुल बना दिया है, बावला और अपना सेवक बना लिया है।

भावार्थः—यदि शुद्धात्मदृष्टिसे देखा जाय तो वास्तवमें यह जगत उन्मत्त, भ्रान्त, मूर्च्छित, सुप्त और आकुलित आदि है और स्व-परके ज्ञान होनेपर यह ऐसा ही भासने लगता है सो ठीक भी है क्योंकि भेदविज्ञानीका लक्ष्य शुद्धचिद्रूपकी ओर रहता है और संसार अपने-अपने अभीष्ट लक्ष्यको लेकर काम करता है, आपसमें दोनोंका विरोध है इसलिये भेद विज्ञानीको संसारकी स्थिति अवश्य ही विपरीत जान पड़नी चाहिये ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीणां भर्त्ता बलानां हरय इव धरा भूपतीनां स्ववत्सो
धेनूनां चक्रवाक्या दिनपतिरतुलश्चातकानां घनार्णः ।
कासाराद्यञ्चराणाममृतमिव नृणां वा निर्जौकः सुराणां
वैद्यो रोगातुराणां प्रिय इव हृदि मे शुद्धचिद्रूपनामा ॥३॥

अर्थः—जिस प्रकार स्त्रियोंको अपना स्वामी, बलभद्रोंको नारायण, राजाओंको पृथ्वी, गौओंको बछड़े, चकवियोंको सूर्य, चातकोंको मेघका जल, जलचर आदि जीवोंको तालाब आदि, मनुष्योंको अमृत, देवोंको स्वर्ग और रोगियोंको वैद्य अधिक प्यारा लगता है उसीप्रकार मुझे शुद्धचिद्रूपका नाम परम प्रिय मालूम होता है इसलिये मेरी यह कामना है कि मेरा प्यारा यह शुद्धचिद्रूप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहे ॥ ३ ॥

शापं वा कलयंति वस्तुहरणं चूर्णं वधं ताडनं
छेदं भेदगदादिहास्यदहनंनिंदाऽऽपदापीडनं ।
पव्यग्न्यब्ध्यगपंककूपवनभूक्षेपापमानं भयं
केचिच्चेत् कलयंतु शुद्धपरमब्रह्मस्मृतावन्वहं ॥४॥

अर्थः—जिस समय मैं शुद्धचिद्रूपके चितवनमें लीन होऊँ उस समय दुष्ट मनुष्य यदि मुझे निरंतर शाप देवें–दो, मेरी चीज चुराये–चुराओ, मेरे शरीरके टुकड़े टुकड़े करें, ताड़ें, छेदें, मेरे रोग उत्पन्न कर हँसी करें, जलावें, निन्दा करें, आपत्ति और पीड़ा करें–करो, सिर पर वज्र डालें–डालो, अग्नि, समुद्र, पर्वत, कीचड़, कुँआ, वन और पृथ्वी पर फैंके–फैंको: अपमान और भय करें–करो, मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं हो सकता अर्थात् वे मेरी आत्माको किसी प्रकार भी हानि नहीं पहुँचा सकते ॥४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंद्रार्कभ्रभवत्सदा सुरनदीधारौघसंपातव-
ल्लोकेस्मिन् व्यवहारकालगतिवद्द्रव्यस्यपर्यायवत् ।
लोकाधस्तलवातसंगमनवत् पद्मादिकोद्भूतिवत्
चिद्रूपस्मरणं निरंतरमहो भूयाच्छिवाप्त्यैमम ॥५॥

अर्थः—जिस प्रकार संसारमें सूर्य–चन्द्रमा निरंतर घूमते रहते हैं, गंगा नदीकी धार निरंतर बहती रहती है, घंटा, घड़ी, पल आदि व्यवहार कालका भी सदा हेर फेर होता रहता है, द्रव्योंकी पर्यायें सदा पलटती रहती हैं, लोकके अधोभागमें घनवात, तनुवात और अंबुवात ये तीनों वातें सदा घूमती रहती हैं और तालाब आदिमें पद्म आदि सदा उत्पन्न होते रहते हैं, अहो! उसीप्रकार मेरे मनमें भी सदा शुद्धचिद्रूपका स्मरण बना रहे जिससे मेरा कल्याण हो ॥५॥

इति हृत्कमले शुद्धचिद्रूपोऽहं हि तिष्ठतु ।
द्रव्यतो भावतस्तावद् यावदंगे स्थितिर्मम ॥ ६ ॥

अर्थः—जब तक मैं (आत्मा) द्रव्य या भाव किसी रीतिसे इस शरीरमें मौजूद हूं तब तक मेरे हृदय कमलमें शुद्धचिद्रूपोऽहं (मैं शुद्धचित्स्वरूप हूँ) यह बात सदा स्थित रहे ॥ ६ ॥

दृश्यंतेऽतीव निःसाराः क्रिया वागंगचेतसां ।
कृतकृत्यत्वतः शुद्धचिद्रूपं भजता सता ॥ ७ ॥

अर्थः—मैं कृतकृत्य हो चुका हूँ—संसारमें मुझे करनेके लिये कुछ भी काम बाकी नहीं रहा है क्योंकि मैं शुद्धचिद्रूपके चिंतवनमें दत्तचित्त हूँ इसलिये मन, वचन और शरीरकी

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अन्य समस्त क्रियायें मुझे अत्यन्त निस्सार मालूम पड़ती हैं उनमें कोई सार दृष्टिगोचर नहीं होता ।। ७ ।।

किंचित्कदोत्तमं क्वापि न यतो नियमात्मनः ।
तस्मादनंतशः शुद्धचिद्रूपाय प्रतिक्षणं ॥ ८ ॥

अर्थः—किसी काल और देशमें शुद्धचिद्रूपसे बढ़कर कोई भी पदार्थ उत्तम नहीं है—ऐसा मुझे पूर्ण निश्चय है, इसलिये मैं इस शुद्धचिद्रूपके लिये प्रति-समय अनन्तबार नमस्कार करता हूँ ।। ८ ।।

बाह्यांत संगमगं नृसुरपतिपदं कर्मबन्धादिभावं
विद्याविज्ञान शोभाबलभवखसुखं कीर्तिरूपप्रतापं ।
राज्यागाख्यागकालास्रवकुपरिजनं वाग्मनोयानधीद्धा-
तीर्थेशत्वं ह्यनित्यं स्मर परमचलं शुद्धचिद्रूपमेकं ॥ ९ ॥

अर्थः—बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह, शरीर, सुरेन्द्र और नरेन्द्रका पद, कर्मबन्ध आदि भाव, विद्या, विज्ञान-कलाकौशल, शोभा, बल, जन्म, इन्द्रियोंका सुख, कीर्ति, रूप, प्रताप, राज्य, पर्वत, वृक्ष, नाम, काल, आस्रव, पृथ्वी, परिवार, वाणी, मन, वाहन, बुद्धि, दीप्ति और तीर्थंकरपना आदि सब पदार्थ चलायमान अनित्य हैं; परन्तु केवल शुद्धचिद्रूप नित्य है और सर्वोत्तम है, इसलिये सब पदार्थोंका ध्यान छोड़कर इसीका ध्यान करो ।

भावार्थः—जो पदार्थ सदा अपने साथ रहे उसीका ध्यान करना आवश्यक है और उचित है, विनाशीक पदार्थोंके ध्यान करनेसे क्या प्रयोजन ? क्योंकि वह तो अपनी अवधिके अन्तमें नियमसे नष्ट हो जायेंगे इसलिये उनका ध्यान करना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यर्थ है और शुद्धचिद्रूप नित्य अविनाशी है इसलिये उसीका ध्यान करना कार्यकारी है ।।९।।

रागाद्या न विधातव्याः सत्यसत्यपि वस्तुनि ।
ज्ञात्वा स्वशुद्धचिद्रूपं तत्र तिष्ठ निराकुलः ॥१०॥

अर्थः—शुद्धचिद्रूपके स्वरूपको भले प्रकार जानकर भले बुरे किसी भी पदार्थमें रागद्वेष आदि न करो सबमें समता भाव रखो और निराकुल हो अपनी आत्मामें स्थिति करो ।। १० ।।

चिद्रूपोऽहं स मे तस्मात्तं पश्यामि सुखी ततः ।
भवक्षितिर्हितं मुक्तिर्निर्यासोऽयं जिनागमे ॥११॥

अर्थ :—'मैं शुद्धचिद्रूप हूं' इसलिये मैं उसको देखता हूं और उसीसे मुझे सुख मिलता है । जैन शास्त्रका भी यही निचोड़ है । उसमें भी यही बात बतलाई है कि शुद्ध-चिद्रूपके ध्यानसे संसारका नाश और हितकारी मोक्ष प्राप्त होता है ।। ११ ।।

चिद्रूपे केवले शुद्धे नित्यानंदमये यदा ।
स्वे तिष्ठति तदा स्वस्थं कथ्यते परमार्थतः ॥१२॥

अर्थ :—आत्मा स्वस्थ–स्वरूप उसी समय कहा जाता है जबकि वह सदा आनन्दमय केवल अपने शुद्धचिद्रूपमें स्थिति करता है ।

भावार्थ :—स्वस्थका अर्थ (स्वस्मिन् तिष्ठतीति) अपनेमें स्थित रहनेवाला होता है । संसारमें सिवाय शुद्धचिद्रूपके अन्य कोई भी पदार्थ आत्माका अपना स्व नहीं, इसलिये सदा आनन्दमय केवल शुद्धचिद्रूपमें स्थित रहना ही स्वस्थपना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है; किन्तु स्वर्ग-देवेन्द्र आदि पदोंमें विद्यमान आत्माको स्वस्थ नहीं कह सकते ॥१२॥

निश्चलः परिणामोऽस्तु स्वशुद्धचिति मामकः ।
शरीरमोचनं यावदिव भूमौ सुराचलः ॥१३॥

अर्थ :—जिस प्रकार पृथ्वीमें मेरु पर्वत निश्चलरूपसे गढ़ा हुआ है जरा भी उसे कोई हिला-चला नहीं सकता उसीप्रकार मेरी भी यही कामना है कि जब तक इस शरीरका संबंध नहीं छूटता तब तक इसी आत्मिक शुद्धचिद्रूपमें मेरा भी परिणाम निश्चलरूपसे स्थित रहे, जरा भी इधर उधर न भटके ॥१३॥

सदा परिणतिर्मेऽस्तु शुद्धचिद्रूपकेऽचला ।
अष्टमीभूमिकामध्ये शुभा सिद्धशिला यथा ॥१४॥

अर्थ :—जिस प्रकार आठवीं पृथ्वी मोक्षमें, अत्यन्त शुभ सिद्धशिला निश्चलरूपसे विराजमान है उसीप्रकार मेरी परिणति भी इस शुद्धचिद्रूपमें निश्चलरूपसे स्थित रहे ॥१४॥

चलंति सन्मुनींद्राणां निर्मलानि मनांसि न ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानात् सिद्धक्षेत्राच्छिवा यथा ॥ १५ ॥

अर्थ :—जिस प्रकार कल्याणकारी सिद्धक्षेत्रसे सिद्ध भगवान् किसी रीतिसे चलायमान नहीं होते उसी प्रकार उत्तम मुनियोंके निर्मल मन भी शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे कभी चल-विचल नहीं होते ॥१५॥

मुनीश्वरैस्तथाभ्यासो दृढः सम्यग्विधीयते ।
मानसं शुद्धचिद्रूपे यथाऽत्यंतं स्थिरीभवेत् ॥ १६ ॥

अर्थ :—मुनिगण इस रूपसे शुद्ध चिद्रूपके ध्यानका दृढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास करते हैं कि उनका मन शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें सदा निश्चलरूपसे स्थित बना रहे, जरा भी इधर-उधर चल विचल न हो सके ॥१६॥

सुखे दुःखे महारोगे क्षुधादीनामुपद्रवे ।
चतुर्विधोपसर्गे च कुर्वे चिद्रूपचिंतनं ॥ १७ ॥

अर्थः—सुख-दुःख, उग्र रोग और भूख-प्यास आदिके भयंकर उपद्रवोंमें तथा मनुष्यकृत, देवकृत, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत चारों प्रकारके उपसर्गोंमें मैं शुद्धचिद्रूपका ही चिंतवन करता रहूँ, मुझे उनके उपद्रवसे उत्पन्न वेदनाका जरा भी अनुभव न हो ॥ १७ ॥

निश्चलं न कृतं चित्तमनादौ भ्रमतो भवे ।
चिद्रूपे तेन सोढानि महादुखान्यहो मया ॥ १८ ॥

अर्थः—इस संसारमें मैं अनादिकालसे घूम रहा हूँ। हाय ! मैंने कभी भी शुद्धचिद्रूपमें अपना मन निश्चलरूपसे न लगाया इसलिये मुझे अनन्त दुःख भोगने पड़े अर्थात् यदि मैं संसारके कार्योंसे अपना मन हटाकर शुद्धचिद्रूपमें लगाता तो क्यों मुझे अपार वेदना सहनी पड़ती ॥ १८ ॥

ये याता यांति यास्यंति निर्वृतिं पुरुषोत्तमाः ।
मानसं निश्चलं कृत्वा स्वे चिद्रूपे न संशयः ॥ १९ ॥

अर्थः—जो पुरुषोत्तम-महात्मा मोक्ष गये, या जा रहे हैं और जावेंगे इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने अपना मन शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें निश्चलरूपसे लगाया, लगाते हैं और लगावेंगे ।

भावार्थ:—विना शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें चित्त लगाये मोक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदापि नहीं मिल सकता, इसलिये जिन्होंने शुद्धचिद्रूपमें अपना मन लगाया वे मोक्ष गये, मन लगा रहे हैं वे जा रहे हैं और जो मन लगावेंगे वे अवश्य जावेंगे इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं ।। १९ ।।

निश्चलोंऽगी यदा शुद्धचिद्रूपोऽहमिति स्मृतौ ।
तदैव भावमुक्तिः स्यात्क्रमेण द्रव्यमुक्तिभाग् ॥ २० ॥

अर्थः—जिस समय निश्चल मनसे यह स्मरण किया जाता है कि 'मैं शुद्धचिद्रूप हूँ', भाव-मोक्ष उसी समय हो जाता है और द्रव्य-मोक्ष क्रमशः होता चला जाता है ।

भावार्थः—स्व और पर पदार्थोंका भेद विज्ञान होना भाव-मोक्ष है और शरीर आदिसे सर्वथा रहित हो सिद्धशिला पर आत्माका जा विराजना द्रव्यमोक्ष है । जिस समय संसारसे सर्वथा उदासीन हो 'मैं शुद्धचिद्रूप हूँ' ऐसा निश्चल स्मरण किया जाता है भाव-मोक्ष उसी समय हो जाता है और ज्यों ज्यों कर्मोंका नाश, शरीर आदिसे रहितपना होता जाता है त्यों त्यों द्रव्य-मोक्ष होता चला जाता है ।। २० ।।

इतिमुमुक्षुभट्टारक ज्ञानभूषणविरचितानां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपस्मरणनिश्चलता प्रतिपादको नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेकी निश्चलताको बतलानेवाला छठा अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें नयोंके अवलम्बनका वर्णन

न यामि शुद्धचिद्रूपे लयं यावदहं दृढं ।
न मुंचामि क्षणं तावद् व्यवहारावलंबनं ॥ १ ॥

अर्थः—जब तक मैं दृढ़रूपसे शुद्धचिद्रूपमें लीन न हो जाऊं तब तक मैं व्यवहारनयका सहारा नहीं छोड़ूँ ।

अशुद्धं किल चिद्रूपं लोके सर्वत्र दृश्यते ।
व्यवहारनयं श्रित्वा शुद्धं बोधदृशा क्वचित् ॥ २ ॥

अर्थः—व्यवहारनयके अवलम्बनसे सर्वत्र संसारमें अशुद्ध ही चिद्रूप दृष्टिगोचर होता है, निश्चयनयसे शुद्ध तो कहीं किसी आत्मामें दिखता है ।

भावार्थः—व्यवहारनयके अवलंबनसे चिद्रूप कभी शुद्ध हो ही नहीं सकती किन्तु शुद्धनिश्चयके अवलंबनसे ही वह शुद्ध हो सकता है इसलिये शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषियोंको चाहिये कि वे शुद्धनिश्चयनयकी ओर विशेषरूपसे अपनी दृष्टिको लगावें ॥ २ ॥

चिद्रूपे तारतम्येन गुणस्थानाच्चतुर्थतः ।
मिथ्यात्वाद्युदयाद्यख्यमलापायाद् विशुद्धता ॥ ३ ॥

अर्थः—गुणस्थानोंमें चढ़नेवाले जीवोंको चौथे गुणस्थानसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभरूप मलोंका ज्यों ज्यों नाश होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाता है वैसा ही वैसा चिद्रूप भी विशुद्ध होता चला जाता है—बिना मिथ्यात्व आदि मलोंके नाश किये चिद्रूप कभी विशुद्ध नहीं हो सकता ।। ३ ।।

मोक्षस्वर्गार्थिनां पुंसां तात्त्विकव्यवहारिणां ।
पंथाः पृथक् पृथक् रूयो नागरागारिणामिव ॥ ४ ॥

अर्थ :—जिस प्रकार भिन्न-भिन्न नगरके जाने वाले पथिकोंके मार्ग भिन्न-भिन्न होते हैं, उसीप्रकार मोक्षके इच्छुक तात्त्विक पुरुषोंका व स्वर्गके इच्छुक अतात्त्विक पुरुषोंका मार्ग भिन्न-भिन्न है ।।४।।

चिंताक्लेशकषायशोकबहुले देहादिसाध्यात्परा-
धीने कर्मनिबंधनेऽतिविषमे मार्गे भयाशान्विते ।
व्यामोहे व्यवहारनामनि गतिं हित्वा व्रजात्मन् सदा
शुद्धे निश्चयनामनीह सुखदेऽमुत्रापि दोषोज्झिते ॥ ५ ॥

अर्थ :—हे आत्मन् ! यह व्यवहार मार्ग चिन्ता, क्लेश, कषाय और शोकसे जटिल है । देह आदि द्वारा साध्य होनेसे पराधीन है । कर्मोंके लानेमें कारण है । अत्यन्त विकट, भय और आशासे व्याप्त है और व्यामोह करानेवाला है; परन्तु शुद्धनिश्चयनयरूप मार्गमें यह कोई विपत्ति नहीं है, इसलिये तूँ व्यवहारनयको त्यागकर शुद्धनिश्चयनयरूप मार्गका अवलंबन कर; क्योंकि यह इस लोककी क्या बात ? परलोक में भी सुखका देनेवाला है और समस्त दोषोंसे रहित निर्दोष है ।

भावार्थ :—व्यवहारनयरूप मार्गमें गमन करनेसे नाना प्रकारकी चिंताओंका भांति भांतिके क्लेश, कषाय और शोकोंका सामना करना पड़ता है । उसमें देह, इन्द्रियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मन आदिकी आवश्यकता पड़ती है, इसलिये वह पराधीन है । शुभ–अशुभ दोनों प्रकारके कर्म भी व्यवहारनय के अवलंबनसे ही आते हैं । अत्यन्त विषम हैं । उसके अनुयायी पुरुषोंको नानाप्रकारके भय और आशाओंसे उत्पन्न दुःख भोगने पड़ते हैं और भ्रान्त होना पड़ता है; परन्तु शुद्ध निश्चयनयरूप मार्गमें गमन करनेसे चिन्ता, क्लेश आदि नहीं भोगने पड़ते, वह स्वाधीन है—उसमें शरीर आदिकी आवश्यकता नहीं पड़ती । उसके अवलंबनसे किसी प्रकारके कर्मका भी आस्रव नहीं होता ! वह विकट, भय और आशाजन्य दुःख भी नहीं भुगाता एवं व्यामुग्ध भी नहीं करता, इसप्रकार भी दोनों लोकमें सुख देनेवाला और निर्दोष है, इसलिये ऐसे व्यवहार मार्गका त्याग कर सर्वोत्तम निश्चय मार्गसे ही गमन करना चाहिये ।।५।।

न भक्तवृंदैर्न च शिष्यवर्गैर्न पुस्तकाद्यैर्न च देहमुख्यैः ।
न कर्मणा केन ममास्ति कार्यं विशुद्धचित्यस्तु लयः सदैव ॥ ६ ॥

अर्थ :—मेरा मन शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये उत्सुक है, इसलिये न तो संसारमें मुझे भक्तोंकी आवश्यक्ता है, न शिष्यवर्ग, पुस्तक, देह आदिसे ही कुछ प्रयोजन है एवं न मुझे कोई काम करना ही अभीष्ट है । केवल मेरी यही कामना है कि मेरी परिणति सदा शुद्धचिद्रूपमें ही लीन रहे । सिवाय शुद्धचिद्रूपके, बाह्य किसी पदार्थमें जरा भी न जाय ।।६।।

न चेतसा स्पर्शमहं करोमि सचेतनाचेतनवस्तुजाते ।
विमुच्य शुद्धं हि निजात्मतत्त्वं क्वचित्कदाचित्कथमप्यवद्यं ।।७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :—मेरी यह कामना है कि शुद्धचिद्रूप नामक पदार्थको छोड़कर मैं किसी भी चेतन या अचेतन पदार्थका किसी देश और किसी कालमें कभी भी अपने मनसे स्पर्श न करूं।

भावार्थ :—मैं जब किसी पदार्थका चिंतवन करूं तो शुद्धचिद्रूपका ही करूं। शुद्धचिद्रूपसे अतिरिक्त किसी पदार्थका चाहे वह चेतन–अचेतन कैसा भी हो, कभी किसी कालमें भी न करूं ॥७॥

व्यवहारं समालंब्य येऽक्षि कुर्वन्ति निश्चये ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिस्तेषामवतरस्य न ॥ ८ ॥

अर्थ :—व्यवहारनयका अवलंबन कर जो महानुभाव अपनी दृष्टिको शुद्धनिश्चयनयकी ओर लगाते हैं, उन्हें ही संसारमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति होती है। अन्य मनुष्योंको शुद्धचिद्रूपका लाभ कदापि नहीं हो सकता ॥८॥

संपर्कात् कर्मणोऽशुद्धं मलस्य वसनं यथा ।
व्यवहारेण चिद्रूपं शुद्धं तन्निश्चयाश्रयात् ॥ ९ ॥

अर्थ :—जिस प्रकार निर्मल वस्त्र भी मैलसे मलिन-अशुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार व्यवहारनयसे कर्मके संबंधसे शुद्धचिद्रूप भी अशुद्ध है; परन्तु शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिसे वह शुद्ध ही है ॥९॥

अशुद्धं कथ्यते स्वर्णमन्यद्रव्येण मिश्रितं ।
व्यवहारं समाश्रित्य शुद्धं निश्चयतो यथा ॥ १० ॥
युक्तं तथाऽन्यद्रव्येणाशुद्धं चिद्रूपमुच्यते ।
व्यवहारनयात् शुद्धं निश्चयात् पुनरेव तत् ॥ ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :—जिस प्रकार व्यवहारनयसे शुद्ध सोना भी अन्य द्रव्यके मेलसे अशुद्ध और वही निश्चयनयसे शुद्ध कहा जाता है, उसी प्रकार शुद्धचिद्रूप भी कर्म आदि निकृष्ट द्रव्योंके सम्बन्धसे व्यवहारनयकी अपेक्षा अशुभ अशुद्ध कहा जाता है और वही शुद्धनिश्चयनयकी अपेक्षा शुद्ध कहा जाता है ।

भावार्थ :—वस्तु जैसी होती है वह वैसी ही रहती है उसमें शुद्धता–अशुद्धता नहीं हो सकती; परन्तु व्यवहारसे दूसरी वस्तुके मेलसे वह अशुद्ध कही जाती है । जिस प्रकार सोना कभी शुद्ध अशुद्ध नहीं हो सकता, वह वही रहता है; परन्तु किसी उंसके मिलतऊ पदार्थके मेल हो जानेसे व्यवहारसे उसे अशुद्ध कहते हैं और निश्चयनयसे शुद्ध भी कहते हैं, उसीप्रकार चिद्रूप भी कर्म आदिके संबंधके कारण व्यवहारसे अशुद्ध कहा जाता है; परन्तु वह वास्तवमें शुद्ध ही है ।। १०–११ ।।

बाह्यांतरन्यसंपर्को येनांशेन वियुज्यते ।
तेनांशेन विशुद्धिः स्याद् चिद्रूपस्य सुवर्णवत् ॥ १२ ॥

अर्थ :—जिस प्रकार स्वर्ण बाहर भीतर जितने भी अंश अन्य द्रव्यके संबंधसे छूट जाता है तो वह उतने अंशमें शुद्ध कहा जाता है, उसीप्रकार चिद्रूपके भी जितने अंशसे कर्म–मलका संबंध नष्ट हो जाता है । उतने अंशमें वह शुद्ध कहा जाता है ।।१२।।

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानपर्वतारोहणं सुधीः ।
कुर्वन् करोति सुदृष्टिर्व्यवहारावलंबनं ॥ १३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरुह्य शुद्धचिद्रूप ध्यानपर्वतमुत्तमं ।
तिष्ठेद् यावत्त्यजेत्तावद् व्यवहारावलंबनं ॥ १४ ॥

अर्थ :—विद्वान मनुष्य जब तक शुद्धचिद्रूपके ध्यानरूपी विशाल पर्वत पर आरोहण करता है तब तक तो व्यवहार-नयका अवलंबन करता है; परन्तु ज्यों ही शुद्धचिद्रूपके ध्यानरूपी विशाल पर्वत पर चढ़कर वह निश्चलरूपसे विराजमान हो जाता है, उसी समय व्यवहारनयका सहारा छोड़ देता है।

भावार्थः—जब तक शुद्धचिद्रूपका ध्यान करे तब तक व्यवहारनयका सहारा रखे; किन्तु जिस समय उसके ध्यानमें पूर्णरूपसे लीन हो जाय—चल विचल परिणाम होनेका भय न रहे, उस समय व्यवहारनयका सहारा छोड़ दे ॥ १३–१४ ॥

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानपर्वतादवरोहणं ।
यदान्यकृतये कुर्यात्तदा तस्यावलंबनं ॥ १५ ॥

अर्थ :—यदि कदाचित् किसी अन्य प्रयोजनके लिये शुद्धचिद्रूपके निश्चल ध्यानरूपी पर्वतसे उतरना हो जाय, ध्यान करना छोड़ना पड़े तो उस समय भी व्यवहारनयका अवलंबन रखें ॥ १५ ॥

याता यांति च यास्यंति ये भव्या मुक्तिसंपदं ।
आलंब्य व्यवहारं ते पूर्वं पश्चाच्चनिश्चयं ॥ १६ ॥
कारणेन विना कार्यं न स्यात्तेन विना नयं ।
व्यवहारं कदोत्पत्तिर्निश्चयस्य न जायते ॥ १७ ॥

अर्थ :—जो महानुभाव मोक्षरूपी संपत्तिको प्राप्त हो गये, हो रहे हैं और होवेंगे उन सबने पहिले व्यवहारनयका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवलंबन किया है; क्योंकि बिना कारणके कार्य कदापि नहीं हो सकता । व्यवहारनय कारण है और निश्चयनय कार्य है इसलिये बिना व्यवहारके निश्चय भी कदापि नहीं हो सकता ॥१६-१७॥

जिनागमे प्रतीतिः स्याज्जिनस्याचरणेऽपि च ।
निश्चयं व्यवहारं तन्नयं भज यथाविधि ॥ १८ ॥

अर्थ :—व्यवहार और निश्चयनयका जैसा स्वरूप बतलाया है उसीप्रकार उसे जानकर उनका इस रीतिमें अवलंबन करना चाहिये जिससे कि जैन शास्त्रोंमें विश्वास और भगवान जिनेन्द्रसे उक्त चारित्रमें भक्ति बनी रहे ॥१८॥

व्यवहारं विना केचिन्नष्टा केवलनिश्चयात् ।
निश्चयेन विना केचित् केवलव्यवहारतः ॥१९॥

अर्थ :—अनेक मनुष्य तो संसारमें व्यवहारका सर्वथा परित्याग कर केवल शुद्धनिश्चयनयके अवलंबनसे नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं और बहुतसे निश्चयनयको छोड़कर केवल व्यवहारका ही अवलंबन कर नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थ :—संसारमें प्राणियोंकी रुचि भिन्न-भिन्न रूपसे होती है । बहुतसे मनुष्य तो केवल शुद्धनिश्चयावलंबी हो मनमें यह दृढ़ संकल्प कर कि हमारी आत्मा सिद्ध-शुद्ध है, वह भला-बुरा कुछ नहीं करता, जो कुछ करता है सो जड़ शरीर ही करता है और उससे हमें कोई सम्बन्ध नहीं, भ्रष्ट हो जाते हैं और चारित्रको सर्वथा जलांजलि दे उन्मार्गगामी बन नाना प्रकारके अत्याचार करने लग जाते हैं तथा अनेक मनुष्य केवल व्यवहारनयका ही अवलंबन कर क्रियाकाण्डोंमें उलझे रह जाते हैं और निश्चयनयकी ओर झांककर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी नहीं देखते, इसलिये मोक्षके पात्र न होनेसे वे भी भ्रष्ट हो जाते हैं ॥१९॥

द्वाभ्यां दृग्भ्यां विना न स्यात् सम्यग्द्रव्यावलोकनं ।
यथा तथा नयाभ्यां चेत्युक्तं स्याद्वादवादिभिः ॥२०॥

अर्थ :—जिस प्रकार एक नेत्रसे भले प्रकारसे पदार्थोंका अवलोकन नहीं होता दोनों ही नेत्रोंसे पदार्थ भले प्रकार दिख सकते हैं, उसीप्रकार एक नयसे कभी कार्य नहीं चल सकता। व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंसे ही निर्दोषरूपसे कार्य हो सकता है ऐसा स्याद्वाद मतके धुरंधर विद्वानोंका मत है ॥२०॥

निश्चयं क्वचिदालंब्य व्यवहार क्वचिन्नयं ।
विधिना वर्त्तते प्राणी जिनवाणीविभूषितः ॥२१॥

अर्थ :—जो जीव भगवान जिनेन्द्रकी वाणीसे भूषित हैं, उनके वचनों पर पूर्णरूपसे श्रद्धान रखनेवाले हैं वे कहीं व्यवहारनयसे काम चलाते हैं और कहीं निश्चयनयका सहारा लेते हैं। अर्थात् जहां जैसा अवसर देखते हैं वहां वैसा ही उसी नयको आश्रयकर कार्य करते हैं ॥२१॥

व्यवहाराद्बहिः कार्यं कुर्याद्विधिनियोजितं ।
निश्चयं चांतरं धृत्वा तत्त्वेदी सुनिश्चलं ॥२२॥

अर्थ :—जो महानुभाव तत्त्वज्ञानी हैं। भलेप्रकार तत्त्वों के जानकार हैं। वे अन्तरंगमें भले प्रकार निश्चयनयको धारण कर व्यवहारनयसे अवसर देखकर बाह्यमें कार्यका संपादन करते हैं। अर्थात् दोनों नयोंको काममें लाते हैं, एक नयसे कोई काम नहीं करते ॥२२॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिं नयाधीनेति पश्यतां ।
नयादिरहितं शुद्धचिद्रूपं तदनंतरं ॥२३॥

अर्थ :—शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नयोंके आधीन है । शुद्ध चिद्रूपके प्राप्त हुये पश्चात् नयोंके अवलंबनकी कोई आवश्यकता नहीं ।

भावार्थः—जब तक शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नहीं होती तब तक नयोंसे काम है; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके बाद कोई नय कार्यकारी नहीं । उस समय नयोंकी अपेक्षाके बिना ही शुद्धचिद्रूप प्रकाशमान रहता है ।। २३ ।।

इति मुमुक्षुभट्टारकज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपस्मरणाय नयावलंबन प्रतिपादक सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारकज्ञानभूषण द्वारा
निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपके
स्मरण करनेके लिये नयोंके आश्रयको
वर्णन करनेवाला सातवाँ अध्याय
समाप्त हुआ ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपके प्राप्तिके लिये भेदज्ञानकी आवश्यकताका वर्णन

छेत्रीसूचीक्रकचपवनैः सीसकाग्न्यूषयन्त्रै—
स्तुल्या पाथः कतकफलवद्धंसपक्षिस्वभावा ।
शस्त्रीजायुस्वधितिसदृशा टंकवैशाखवद्वा
प्रज्ञा यस्योद्भवति हि भिदे तस्य चिद्रूपलब्धिः ॥ १ ॥

अर्थः—जिस महानुभावकी बुद्धि छैनी, सुई, आरा, पवन, सीसा, अग्नि, ऊषयंत्र (कोलू), कतकफल (फिटकरी), हंसपक्षी, छुरी, जायु, दांता, टांकी और वैशाखके समान जड़ और चेतनके भेद करनेमें समर्थ हो गई है, उसी महानुभावको चिद्रूपकी प्राप्ति होती है ।

भावार्थः—जिस प्रकार छैनी, सुई, आरा मिले हुये पदार्थके दो टुकड़े कर देते हैं, पवन गंधको जुदा उड़ाकर ले जाता है, सीसा सोने चांदीको शुद्ध कर देता है, अग्नि–सोना आदिको मैलसे शुद्ध कर देती है, कोलू–ईखके रसको जुदा कर देता है और छुरी आदि मिले हुये पदार्थके टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं, उसीप्रकार जिस महानुभावकी बुद्धिने भी अनादिकालसे एकमेक जड़ और चेतनको जुदा–जुदा कर पहचान लिया है, वही चिद्रूपका लाभ कर सकता है अन्य नहीं ॥१॥

स्वर्णं पाषाणसूताद्वसनमिवमलात्ताम्ररूप्यादिहेम्नो
वा लोहादग्निरिक्षो रस इह जलवक्र र्दमात्केकिपक्षात् ।
ताम्रं तैलं तिलादेः रजतमिव किलोपायतस्ताम्रमुख्यात् ।
दुग्धान्नीरं घृतं च क्रियत इव पृथक् ज्ञानिनात्मा शरीरात् ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—जिस प्रकार स्वर्णपाषाणसे सोना भिन्न किया जाता है, मैलसे वस्त्र, सोनेसे तांबा–चांदी आदि पदार्थ, लोहेसे अग्नि, ईखसे रस, कीचड़से जल, केकी (मयूर)के पंखसे ताँबा, तिल आदिसे तेल, ताँबा आदि धातुओंसे चांदी और दूधसे जल एवं घी भिन्न कर लिया जाता है, उसीप्रकार जो मनुष्य ज्ञानी है–जड़ चेतनका वास्तविक ज्ञान रखता है वह शरीरसे आत्माको भिन्न कर पहिचानता है ।

भावार्थः—मोक्ष अवस्थाके पहिले आत्मा और शरीरका सम्बन्ध अनादिकालसे है । ऐसा कोई भी अवसर प्राप्त न हुआ जिसमें शरीर और आत्मा सर्वथा भिन्न हुये हों तथा अज्ञानियोंको शरीर और आत्मा दोनों एक ही जान पड़ते हैं, उन्हें भेद दृष्टिगोचर होता ही नहीं । परन्तु ज्ञानियोंकी दृष्टिमें अवश्य भेद है क्योंकि जिस प्रकार अनादिकालसे मिले हुये सोनेके पाषाण और सोनेके, मैल और वस्त्रको, तांबा और चांदी–सोनेको, लोह और अग्निको, ईख और उसके रसको, कीचड़ और पानीको, मोरके पंख और तांथेको, तिल और तेलको, तांबा आदि धातु और चांदीको और क्षीर और नीर व घीको सर्वथा भिन्न–भिन्न कर जान लिया जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी भी शरीर और आत्माको सर्वथा भिन्न–भिन्न कर पहिचानता है ।। २ ।।

देशं राष्ट्रं पुराद्यं स्वजनवनधनं वर्गपक्षं स्वकीय-
ज्ञातिं सम्बन्धिवर्गं कुलपरिजनकं सोदरं पुत्रजाये ।
देहं हृद्वाग्विभावान् विकृतिगुणविधीन् कारकादीनि भित्वा
शुद्धं चिद्रूपमेकं सहजगुणनिधिं निर्विभागं स्मरामि ॥ ३ ॥

अर्थः—देश, राष्ट्र, पुरगाँव, स्वजनसमुदाय, धन, वन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्राह्मण आदि वर्णोंका पक्षपात, जाति, सम्बन्धी, कुल, परिवार भाई, पुत्र, स्त्री, शरीर, हृदय और वाणी ये सब पदार्थ विकारके करनेवाले हैं—इनको अपना मानकर स्मरण करनेसे ही चित्त, शुद्धचिद्रूपकी ओरसे हट जाता है, चंचल हो उठता है तथा मैं कर्त्ता और कारण आदि हूँ इत्यादि कारकोंके स्वीकार करनेसे भी चित्तमें चल-विचलता उत्पन्न हो जाती है—इसलिये स्वाभाविक गुणोंके भंडार शुद्धचिद्रूपको ही मैं निर्विभागरूपसे कर्त्ता—कारणका कुछ भी भेद न कर स्मरण मनन, ध्यान करता हूँ ।

भावार्थः—चित्तमें किसी प्रकारकी चंचलता न आना—परिणामोंका आकुलतामय न होना ही परमसुख है । मैं देखता हूँ जिस समय देश, राष्ट्र, पुर, कुल, जाति और परिवार आदिका विचार किया जाता है, उनके रहन-सहन पर ध्यान दिया जाता है तो मेरा चित्त आकुलतामय हो जाता है, रंचमात्र भी परिणामोंको शांति नहीं मिलती परन्तु शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेसे चित्तमें किसी प्रकारकी खट—खट नहीं होती, एकदम शांतिका संचार होने लग जाता है, इसलिये समस्त जगतके जंजालको छोड़कर मैं शुद्धचिद्रूपका ही स्मरण करता हूँ उसीसे मेरा कल्याण होगा ।। ३ ।।

स्वात्मध्यानामृतं स्वच्छं विकल्पानपसार्य सत् ।
पिवति क्लेशनाशाय जलं शैवालवत्सुधीः ।। ४ ।।

अर्थः—जिस प्रकार क्लेश (पिपासा)की शांतिके लिये जलके ऊपर पुरी हुई काईको अलग कर शीतल सुरस निर्मल जल पीया जाता है, उसीप्रकार जो मनुष्य बुद्धिमान हैं, दुःखोंसे दूर होना चाहते हैं वे समस्त संसारके विकल्प जालोंको छोड़कर आत्मध्यानरूपी अनुपम स्वच्छ अमृत—पान करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने चित्तको द्रव्य आदिकी चिन्ताकी ओर नहीं झुकने देते ।। ४ ।।

नात्मध्यानात्परं सौख्यं नात्मध्यानात् परं तपः ।
नात्मध्यानात्परो मोक्षपथः क्वापि कदाचन ॥ ५ ॥

अर्थः—(क्योंकि) इस आत्मध्यानसे बढ़कर न तो कहीं किसी कालमें कोई सुख है, न तप है और न मोक्ष ही है अर्थात् जो कुछ है सो यह आत्मध्यान ही है, इसलिये इसीको परम कल्याणका कर्त्ता समझना चाहिये ।। ६ ।।

केचित्प्राप्य यशः सुखं वरवधूं रायं सुतं सेवकं
स्वामित्वं वरवाहनं वलसुहृत्पांडित्यरूपादिकं ।
मन्यंते सफलं स्वजन्म मुदिता मोहाभि भूता नरा
मन्येऽहं च दुरापयात्मवपुषोर्ज्ञप्त्या भिदः केवलं ॥ ६ ॥

अर्थः—मोहके मदमें मत्त बहुतसे मनुष्य कीर्त्ति प्राप्त होनेसे ही अपना जन्म धन्य समझते हैं । अनेक इन्द्रियजन्यसुख, सुन्दर स्त्री, धन, पुत्र, उत्तम सेवक, स्वामीपना और उत्तम सबारीयोंकी प्राप्तिसे अपना जन्म सफल मानते हैं और बहुतोंको बल, उत्तम मित्र, विद्वत्ता और मनोहररूप आदिकी प्राप्तिसे संतोष हो जाता है; परन्तु मैं आत्मा और शरीरके भेद विज्ञानसे अपना जन्म सफल मानता हूँ ।

भावार्थः—यह जीव अनादिकालसे इस संसारमें घूम रहा है । कई बार इसे कीर्ति, सुख, उत्तम स्त्री, धन, पुत्र और सेवक प्राप्त हो चुके हैं । बहुत बार यह स्वामी–राजा भी हो गया है । इसे उत्तम सवारी, बल, मित्र, विद्वान और रूप आदिकी भी अनेक बार प्राप्ति हो चुकी है; परन्तु मोहके जालमें फँसनेके कारण इसे जरा भी होश नहीं होता और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः पुत्र आदि की प्राप्तिसे अपने जन्मको कृतार्थ मानने लग जाता है। मुझे संसारके चरित्रके भले प्रकार ज्ञानसे इनको प्राप्तिसे किसी प्रकारका संतोष नहीं होता, इसलिये मैं भेदविज्ञानसे ही अपना जन्म कृतार्थ मानता हूँ ॥ ६ ॥

तावत्तिष्ठंति चिद्‌भूमौ दुर्भेद्याः कर्मपर्वताः ।
भेदविज्ञानवज्रं न यावत्पतति मूर्द्धनि ॥ ७ ॥

अर्थः—आत्मारूपी भूमिमें कर्मरूपी अभेद्य पर्वत, तभी तक निश्चलरूपसे स्थिर रह सकते हैं जब तक भेदविज्ञानरूपी वज्र इनके मस्तक पर पड़ कर इन्हें चूर्ण-चूर्ण नहीं कर डालता।

भावार्थः—जब तक भेदविज्ञान नहीं होता तभी तक कर्म आत्माके साथ लगे रहते हैं; परन्तु भेदविज्ञान होते ही कर्म एकदम नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

दुर्लभोऽत्र जगन्मध्ये चिद्रूपरुचिकारकः ।
ततोऽपि दुर्लभं शास्त्रं चिद्रूपप्रतिपादकं ॥ ८ ॥
ततोऽपि दुर्लभो लोके गुरुस्तदुपदेशकः ।
ततोऽपि दुर्लभं भेदज्ञानं चिंतामणिर्यथा ॥ ९ ॥

अर्थः—जो पदार्थ चिद्रूपसे प्रेम करानेवाला है वह संसारमें दुर्लभ है उससे भी दुर्लभ चिद्रूपके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र है। यदि शास्त्र भी प्राप्त हो जाय तो चिद्रूपके स्वरूपका उपदेशक गुरु नहीं मिलता, इसलिये उससे गुरुकी प्राप्ति दुर्लभ है। गुरु भी प्राप्त हो जाय तो भी जिस प्रकार चिन्तामणि रत्नकी प्राप्ति दुर्लभ है, उसीप्रकार भेदविज्ञानकी प्राप्ति भी दुष्प्राप्य है।

भावार्थः—प्रथम तो चिद्रूपके ध्यानमें रुचि नहीं होती

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

यदि रुचि हो जाय तो चिद्रूपके स्वरूपका प्रतिपादन करनेवाला शास्त्र नहीं मिलता कदाचित् शास्त्र प्राप्त हो जाय तो उसका उपदेशक गुरु नहीं प्राप्त होता गुरुकी प्राप्ति हो जाय तो भेद विज्ञानकी प्राप्ति जल्दी नहीं होती, इसलिये भेदविज्ञानकी प्राप्ति सबसे दुर्लभ है ॥ ८–९ ॥

भेदो विधीयते येन चेतनाद्देहकर्मणोः ।
तज्जातविक्रियादीनां भेदज्ञानं तदुच्यते ॥ १० ॥

अर्थः—जिसके द्वारा आत्मासे देह और कर्मका तथा देह एवं कर्मसे उत्पन्न हुई विक्रियाओंका भेद जाना जाय उसे भेदविज्ञान कहते हैं ॥ १० ॥

स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं भेदज्ञानं विना कदा ।
तपःश्रुतवतां मध्ये न प्राप्तं केनचित् क्वचित् ॥ ११ ॥

अर्थः—शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति, बिना भेदविज्ञानके कदापि नहीं हो सकती, इसलिये तपस्वी या शास्त्रज्ञ किसी महानुभावने बिना भेदविज्ञानके आजतक कहीं भी शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति न कर पाई और न कर ही सकता है । जिसने शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति की है उसने भेदविज्ञानसे ही की है ॥ ११ ॥

क्षयं नयति भेदज्ञश्चिद्रूपप्रतिघातकं ।
क्षणेन कर्मणां राशिं तृणानां पावको यथा ॥ १२ ॥

अर्थः—जिस प्रकार अग्नि देखते देखते तृणोंके समूहको जलाकर खाक कर देती है, उसीप्रकार जो भेदविज्ञानी है वह शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिको नाश करनेवाले कर्म समूहको क्षणभरमें समूल नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अछिन्नधारया भेदबोधनं भावयेत् सुधीः ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्त्यै सर्वशास्त्रविशारदः ॥ १३ ॥

अर्थः—जो महानुभाव समस्त शास्त्रोंमें विशारद है और शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिका अभिलाषी है उसे चाहिये कि वह एकाग्र हो भेदविज्ञानकी ही भावना करे—भेदविज्ञानसे अतिरिक्त किसी पदार्थमें ध्यान न लगाये ।। १३ ।।

संवरोऽनिर्जरा साक्षात् जायते स्वात्मबोधनात् ।
तद्भेदज्ञानतस्तस्माच्चच भाव्यं मुमुक्षुणा ॥ १४ ॥

अर्थः—अपने-आत्माके ज्ञानसे संवर और निर्जराकी प्राप्ति होती है । आत्माका ज्ञान भेदविज्ञानसे होता है, इसलिये मोक्षाभिलाषीको चाहिये कि वह भेदविज्ञानकी ही भावना करे ।

भावार्थः—संवर (कर्मोंके आगमनका रुक जाना) और निर्जरा (क्रम-क्रमसे अवशिष्ट कर्मोंका क्षय होना)की प्राप्तिसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । संवर और निर्जराका लाभ आत्मज्ञानसे होता है और आत्मज्ञान भेदज्ञानसे होता है, इसलिये मोक्षाभिलाषीको चाहिये कि वह भेदविज्ञानको सबसे कार्यकारी जान उसीकी भावना करे ।। १४ ।।

लब्धा वस्तुपरीक्षा च शिल्पादि सकला कला ।
बह्वी शक्तिर्विभूतिश्च भेदज्ञप्तिर्न केवला ॥ १५ ॥

अर्थः—इस संसारके अंदर अनेक पदार्थोंकी परीक्षा करना भी सीखा । शिल्प आदि अनेक प्रकारकी कलायें भी हासिल की । बहुत सी शक्तियाँ और विभूतियाँ भी प्राप्त की; परंतु भेदविज्ञानका लाभ आज तक नहीं हुआ ।। १५ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिद्रूपच्छादको मोहरेणुराशिर्न बुध्यते ।
क्व यातीति शरीरात्मभेदज्ञानप्रभंजनात् ॥ १६ ॥

अर्थः—शरीर और आत्माके भेदविज्ञानरूपी महापवनसे चिद्रूपके स्वरूपको ढ़ंकनेवाली मोहकी रेणुयें न मालूम कहाँ किनारा कर जाती है ?

भावार्थः—जिस प्रकार जब तक बलवान पवन नहीं चलता तभी तक धूलिके रेणु इकट्ठे रहते हैं; किन्तु पवनके चलते ही उनका पता नहीं लगता । उसी प्रकार जब तक शरीर और आत्माका भेदविज्ञान नहीं होता—वे भिन्न भिन्न नहीं जान लिये जाते तभी तक मोहका पर्दा आत्माके ऊपर पड़ा रहता है; परन्तु भेदविज्ञानके प्राप्त होते ही वह एकदम लापता हो जाता है ।। १६ ।।

भेदज्ञानं प्रदीपोऽस्ति शुद्धचिद्रूपदर्शने ।
अनादिजमहामोहतामसच्छेदनेऽपि च ॥ १७ ॥

अर्थः—यह भेदविज्ञान, शुद्धचिद्रूपके दर्शनमें जाज्वल्यमान दीपक है और अनादिकालसे विद्यमान मोहरूपी प्रबल अंधकारका नाश करनेवाला है ।

भावार्थः—जिस प्रकार दीपकसे घट पट आदि पदार्थ स्पष्टरूपसे दिखते हैं और अंधकारका नाश हो जाता है, उसीप्रकार भेदविज्ञानसे शुद्धचिद्रूपका भले प्रकार दर्शन होता है और मोहरूपी गाढ़ अंधकार भी बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है ।। १७ ।।

भेदविज्ञाननेत्रेण योगी साक्षादवेक्षते ।
सिद्धस्थाने शरीरे वा चिद्रूपं कर्मणोज्झितं ॥ १८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ :—योगीगण भेदविज्ञानरूपी नेत्रकी सहायतासे सिद्धस्थान और शरीरमें विद्यमान समस्त कर्मोंसे रहित शुद्धचिद्रूपको स्पष्टरूपसे देख लेते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार गृह आदि स्थानों पर स्थित पदार्थ नेत्रसे भले प्रकार देख–जान लिये जाते हैं, उसी प्रकार सिद्धस्थान (मोक्ष) और अपने शरीरमें विद्यमान समस्त कर्मोंसे रहित इस शुद्धचिद्रूपको दिखानेवाला जो भेदविज्ञान है उसके द्वारा योगी शुद्धचिद्रूपको भी स्पष्टरूपसे देख लेते हैं ।। १८ ।।

मिलितानेकवस्तूनां स्वरूपं हि पृथक् पृथक् ।
स्पर्शादिभिर्विदग्धेन निःशंकं ज्ञायते यथा ॥ १९ ॥

तथैव मिलितानां हि शुद्धचिद्देहकर्मणां ।
अनुभूत्या कथं सद्भिः स्वरूपं न पृथक् पृथक् ॥२०॥**युग्मं**॥

अर्थः—जिस प्रकार विद्वान मनुष्य आपसमें मिले हुये अनेक पदार्थोंका स्वरूप स्पर्श आदिके द्वारा स्पष्टरूपसे भिन्न-भिन्न पहिचान लेते हैं, उसीप्रकार आपसमें अनादिकालसे मिले हुये शुद्धचिद्रूप, शरीर और कर्मोंके स्वरूपको भी अनुभवज्ञानके बलसे सत्पुरुषों द्वारा भिन्न–भिन्न क्यों न जाना जाय ?

भावार्थः—संसारमें पदार्थोंके स्वरूप भिन्न–भिन्न हैं और उनके बतलाने वाले लक्षण भी भिन्न–भिन्न हैं । जल और अग्नि आदि पदार्थ एक स्थान पर स्थित रहने पर भी अपने शीत और उष्ण स्पर्शसे स्पष्टरूपसे भिन्न–भिन्न जान लिये जाते हैं; क्योंकि जल और अग्निमें शीतस्पर्श सिवाय जलके और उष्णस्पर्श सिवाय अन्यमें नहीं रहता । उसी प्रकार यद्यपि शुद्धचिद्रूप, शरीर और कर्म अनादिकालसे आपसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकमेक हो रहे हैं । आज तक कभी ऐसा अवसर न आया जिसमें ये सर्वथा भिन्न-भिन्न हुये हों; तथापि अनुभवज्ञानके बलसे इनको भिन्न भिन्न कर जान लिया जाता है-यह शुद्धचिद्रूप है और ये जड़ शरीर और कर्म हैं—यह बात स्पष्टरूपसे समझमें आ जाती है ।। १९-२० ।।

आत्मानं देहकर्माणि भेदज्ञाने समागते ।
मुक्त्वा यांति यथा सर्पा गरुडे चंदनद्रुमं ।। २१ ।।

अर्थः—जिस प्रकार चन्दन वृक्ष पर लिपटा हुआ सर्प अपने बैरी गरुड़ पक्षीको देखते ही तत्काल आँखोंसे ओझल हो जाता है, पता लगाने पर भी उसका पता नहीं लगता । उसी प्रकार भेदविज्ञानके उत्पन्न होते ही समस्त देह तथा कर्म आत्माको छोड़कर न मालूम कहां लापता हो जाते हैं, विरोधी भेदविज्ञानके उत्पन्न होते ही कर्मोंकी सूरत भी नहीं दिख पड़ती ।। २१ ।।

भेदज्ञानबलात् शुद्धचिद्रूपं प्राप्य केवली ।
भवेद्देवाधिदेवोऽपि तीर्थकर्त्ता जिनेश्वरः ।। २२ ।।

अर्थः—इसी भेदविज्ञानके बलसे यह आत्मा शुद्धचिद्रूपको प्राप्तकर केवलज्ञानी, तीर्थंकर और जिनेश्वर और देवाधिदेव होता है ।

भावार्थः—केवली, जिनेश्वर आदि पदोंकी प्राप्ति अति कठिन है परंतु भेदविज्ञानियोंके लिये अति कठिन नहीं; क्योंकि जो महानुभाव अपने भेदविज्ञानरूपी अखंडबलसे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति कर लेते हैं वे केवलज्ञानरूपी अचिंत्यविभूतिसे मंडित हो जाते हैं, समस्त देवोंके स्वामी, तीर्थंकर और जिनेश्वर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी कहलाने लगते हैं, इसलिये यह भेदविज्ञान संसारकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला अनुपम चिन्तामणि रत्न है ।। २२ ।।

इति मुमुक्षु भट्टारक ज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूप प्राप्तये भेदविज्ञान प्राप्ति प्रतिपादकोऽष्टष्ठोमोऽध्यायः ॥६॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा
निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी
प्राप्ति करनेके लिये भेदविज्ञानकी प्राप्तिको
बतलानेवाला आठवाँ अध्याय
समाप्त हुआ ॥ ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवमाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपके ध्यानके लिये मोहत्यागकी उपयोगिता

अन्यदीया मदीयाश्च पदार्थाश्चेतनेतराः ।
एतेऽदश्चिंतनं मोहो यतः किंचिन्न कस्यचित् ॥१॥

अर्थः—ये चेतन और जड़ पदार्थ पराये और अपने हैं इस प्रकारका चिंतवन मोह है; क्योंकि यदि वास्तवमें देखा जाय तो कोई पदार्थ किसीका नहीं है ।

भावार्थः—सिवाय शुद्धचिद्रूपके संसारमें कोई पदार्थ अपना नहीं, इसलिये स्त्री, पुत्र आदि चेतन, धन–माल–खजाना आदि अचेतन पदार्थोंमें अपने मनका संकल्प–विकल्प करना मोह है ॥ १ ॥

दत्तो मानोऽपमानो मे जल्पिता कीर्त्तिरुज्ज्वला ।
अनुज्ज्वलापकीर्त्तिर्वा मोहस्तेनेति चिंतनं ॥ २ ॥

अर्थः—इसने मेरा आदर सत्कार किया, इसने मेरा अपमान अनादर किया, इसने मेरी उज्ज्वल कीर्ति फैलाई और इसने मेरी अपकीर्त्ति फैलाई, इस प्रकारका विचार मनमें लाना ही मोह है ।

भावार्थः—यदि वास्तवमें देखा जाय तो किसका आदर? किसका अनादर ? किसकी कीर्ति ? और किसकी अपकीर्त्ति ? सब बातें मिथ्या हैं; परन्तु मोहसे मूढ़ यह प्राणी आदर अनादरका विचार करने लग जाता है, इसलिये उसका इस प्रकारका विचार करना प्रबल मोह है ॥ २ ॥

किं करोमि क्व यामीदं क्व लभेय सुखं कुतः ।
किमाश्रयामि किं वच्मि मोहचिंतनमीदृशं ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? कैसे सुखी होऊँ ? किसका सहारा लूँ ? और क्या कहूं ? इस प्रकारका विचार करना भी मोह है ।। ३ ।।

चेतनाचेतने रागो द्वेषो मिथ्यामतिर्मम ।
मोहरूपमिदं सर्वंचिद्रूपोऽहं हि केवलः ॥ ४ ॥

अर्थः—ये जो संसारमें चेतन–अचेतनरूप पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं वे मेरे हैं या दूसरेके हैं, इस प्रकार राग और द्वेषरूप विचार करना मिथ्या है; क्योंकि ये सब मोहस्वरूप हैं और मेरा स्वरूप शुद्धचिद्रूप है, इसलिये ये मेरे कभी नहीं हो सकते ।। ४ ।।

देहोऽहं मे स वा कर्मोदयोऽहं वाप्यसौ मम ।
कलत्रादिरहं वा मे मोहोऽदश्चितनं किल ॥ ५ ॥

अर्थः—मैं शरीरस्वरूप हूँ और शरीर मेरा है, मैं कर्मका उदयस्वरूप हूं और कर्मका उदय मेरा है, मैं स्त्री पुत्र आदि स्वरूप हूँ और स्त्री पुत्र आदि मेरे हैं, इस प्रकारका विचार करना भी सर्वथा मोह है–देह आदिमें मोहके होनेसे ही ऐसे विकल्प होते हैं ।। ५ ।।

तज्जये व्यवहारेण संत्युपाया अनेकशः ।
निश्चयेनेति मे शुद्धचिद्रूपोऽहं स चिंतनं ॥ ६ ॥

अर्थः—व्यवहारनयसे इस उपर्युक्त मोहके नाश करनेके लिये बहुतसे उपाय हैं, निश्चयनयसे "मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" "वही मेरा है" ऐसा विचार करने मात्रसे ही इसका सर्वथा नाश हो जाता है ।

भावार्थः—यह मेरा है, यह तेरा है, मैं शरीर आदि स्वरूप हूँ और शरीर आदि मेरे स्वरूप हैं, इस प्रकारका

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

विचार करना जो पहिले मोह बतला आये हैं उस मोहका नाश व्यवहारनयकी अपेक्षा बाह्य–अभ्यन्तर परिग्रहके त्यागसे तप आदिके आचरण करनेसे होता है और निश्चयनयसे "मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" आदि विचार करनेसे ही वह समूल नष्ट हो जाता है ।। ६ ।।

धर्मोद्धारविनाशनादि कुरुते कालो यथा रोचते
स्वस्यान्यस्य सुखासुखं वरखजं कर्मैव पूर्वार्जितं ।
अन्ये येऽपि यथैव संति हि तथैवार्थाश्च तिष्ठंति ते
तच्चिंतामिति मा विधेहि कुरु ते शुद्धात्मनश्चिंतनं ।। ७ ।।

अर्थः—कालके अनुसार धर्मका उद्धार व विनाश होता है; पहिलेका उपार्जन किया हुआ कर्म ही इन्द्रियोंके उत्तमोत्तम सुख और नाना प्रकारके क्लेश हैं । जो अन्य पदार्थ भी जैसे और जिस रीतिसे हैं वे उसी रीतिसे विद्यमान हैं, इसलिये हे आत्मन् ! तू उनके लिये किसी बातकी चिंता न कर, अपने शुद्धचिद्रूपकी ओर ध्यान दे ।

भावार्थः—जो पदार्थ जैसा है वह उसी रूपसे है । वास्तविक दृष्टिसे रत्तीभर भी उसमें हेर फेर नहीं हो सकता । देखो ! कालके अनुसार धर्मका उद्धार व विनाश होता है पहिले उपार्जन किये कर्म ही संसारमें सुख–दुःख है और भी जो पदार्थ जिस रूपमें हैं वे उसी रूपसे स्थित हैं, तब उनके विषयमें चिन्ता करना व्यर्थ है, इसलिये आत्माको चाहिये कि वह समस्त प्रकारकी चिन्ताओंका परित्याग कर अपने शुद्धचिद्रूपका ही चिन्तन करे । उसीके चिन्तनसे उसका कल्याण हो सकता है ।। ६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्गंधं मलभाजनं कुविधिना निष्पादितं धातुभि-
रंगं तस्य जनैर्निजार्थमखिलैराख्या धृता स्वेच्छया ।
तस्याः किं मम वर्णनेन सततं किं निंदनेनैव च
चिद्रूपस्य शरीरकर्मजनिताऽन्यस्याप्यहो तत्त्वतः ॥ ८ ॥

अर्थः—यह शरीर दुर्गन्धमय है । विष्टा मूत्र आदि मलोंका घर है । निंदित कर्मकी कृपासे मल, मज्जा आदि धातुओंसे बना हुआ है । तथापि मूढ़ मनुष्योंने अपने स्वार्थकी पुष्टिके लिये इच्छानुसार इसकी प्रशंसा की है; परन्तु मुझे इस शरीरकी प्रशंसा और निंदासे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि मैं निश्चयनयसे शरीर, कर्म और उनसे उत्पन्न हुये विकारोंसे रहित शुद्धचिद्रूप स्वरूप हूँ ।

भावार्थः—यदि यह शरीर मेरा और मेरे समान होता तो मुझे इसकी प्रशंसा–निन्दा करनी पड़ती सो तो है नहीं; क्योंकि यह महा अपवित्र है, जड़ है और मैं शुद्धचिद्रूप हूँ, इसलिये कभी भी इसकी मेरे साथ तुलना नहीं हो सकती, इसलिये मुझे इसकी प्रशंसा और निन्दासे कोई लाभ नहीं ।।८ ।

कीर्तिं वा पररंजनं खविषयं केचिन्निजं जीवितं
संतानं च परिग्रहं भयमपि ज्ञानं तथा दर्शनं ।
अन्यस्याखिलवस्तुनो रुगयुतिं तद्धेतुमुद्दिश्य च
कुर्युः कर्म विमोहिनो हि सुधियश्चिद्रूपलब्ध्यै परं ॥ ९ ॥

अर्थः—संसारमें बहुतसे मोही पुरुष कीर्तिके लिये काम करते हैं, अनेक दूसरोंको प्रसन्न करनेके लिये, इन्द्रियोंके विषयोंकी प्राप्तिके लिये, अपने जीवनकी रक्षाके लिये, संतान, परिग्रह, भय, ज्ञान, दर्शन तथा अन्य पदार्थोंकी प्राप्ति और रोगके अभावके लिये काम करते हैं और बहुतसे कीर्ति आदिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारणोंके मिलानेके लिये उपाय सोचते हैं परन्तु जो मनुष्य बुद्धिमान हैं अपनी आत्माको सुखी बनाना चाहते हैं, वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये ही कार्य करते हैं ।

भावार्थः—संसारमें जीव भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंके हैं । कोई मनुष्य संसारमें कीर्ति लाभ करना ही अच्छा समझते हैं, बहुतसे परको प्रसन्न करनेसे ही अपनेको सुखी मानते हैं, अनेक इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रसन्न रहते हैं, कोई कोई अपने जीवनकी रक्षा, संतानकी उत्पत्ति और परिग्रहकी एकत्रता करना ही अच्छा समझते हैं, बहुतसे ज्ञान-दर्शन आदि अन्य पदार्थोंकी प्राप्ति और रोगके दूर करनेके लिये ही चिंता करते रहते हैं तथा इनकी प्राप्तिके उपाय और उनके अनुकूल कार्य ही किया करते हैं; परन्तु ऐसे मनुष्य संसारमें उत्तम नहीं गिने जाते । मोहके जालमें जकड़े हुये कहे जाते हैं; किन्तु जो बुद्धिमान मनुष्य शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये कार्य करते हैं और उसकी प्राप्तिके उपायोंको सोचते हैं वे प्रशंस्य गिने जाते हैं ।। ९ ।।

कल्पेशनागेशनरेशसंभवं चित्ते सुखं मे सततं तृणायते ।
कुस्त्रीरमास्थानकदेहदेहजात् सदेतिचित्रं मनुतेऽल्पधीः सुखं ॥ १० ॥

अर्थः—मैंने शुद्धचिद्रूपके स्वरूपको भले प्रकार जान लिया है, इसलिये मेरे चित्तमें देवेन्द्र, नागेन्द्र और नरेन्द्रोंके सुख जीर्णतृण सरीखे जान पड़ते हैं; परन्तु जो मनुष्य अल्पज्ञानी हैं अपने और परके स्वरूपका भले प्रकार ज्ञान नहीं रखते वे निंदित स्त्रियां, लक्ष्मी, घर, शरीर और पुत्रसे उत्पन्न हुये सुखको जो कि दुःख स्वरूप हैं, सुख मानते हैं यह बड़ा आश्चर्य है ।। १० ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न बद्धः परमार्थेन बद्धो मोहवशाद् गृही ।
शुकवद् भीमपाशेनाथवा मर्कटमुष्टिवत् ॥ ११ ॥

अर्थः—शुकको भय करानेवाले पाशके समान अथवा बंदरकी मुट्ठीके समान यद्यपि यह जीव वास्तविक दृष्टिसे कर्मोंसे सम्बद्ध नहीं है तथापि मोहसे बँधा ही हुआ है ।

भावार्थः—जिस प्रकार नलिगी पर लटकता हुआ शुक यद्यपि पाशसे बँधा हुआ नहीं रहता तथापि वह अपनेको पाशसे बँधा हुआ मानता है और अपनी सुध-बुधको भूलकर उसको छोड़ना नहीं चाहता—लटकता ही रहता है तथा बंदर जब चनोंके लिये घड़ेमें हाथ डालता है और चनोंकी मुट्ठी बँध जानेसे जब घड़ेसे हाथ नहीं निकलता तो समझता है कि मुझे घड़ेने पकड़ लिया है । उसी प्रकार यदि परमार्थसे देखा जाय तो यह जीव किसी प्रकारके कर्मोंसे बँधा हुआ नहीं है तथापि व्यवहारसे यह मोहके गाढ़ बंधनमें जकड़ा हुआ ही है ॥ ११ ॥

श्रद्धानां पुस्तकानां जिनभवनमठांतेनिवास्यादिकानां
कीर्त्तेरक्षार्थकानां भुवि झटिति जनो रक्षणे व्यग्रचितः ।
यस्तस्य क्वात्मचिंता क्व च विशदमतिः शुद्धचिद्रूपकाप्तिः
क्व स्यात्सौख्यं निजोत्थं क्व च मनसि विचिंत्येति
कुर्वंतु यत्नं ॥ १२ ॥

अर्थः—यह संसारी जीव, नाना प्रकारके धर्मकार्य, पुस्तकें, जिनेन्द्र भगवानके मन्दिर, मठ, छात्र और कीत्तिकी रक्षा करनेके लिये सदा व्यग्रचित रहता है—उन कार्योंसे रंचमात्र भी इसे अवकाश नहीं मिलता, इसलिये न यह किसी प्रकारका आत्मध्यान कर सकता, न इसकी बुद्धि निर्मल रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकती और न शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति और निराकुलतारूप सुख ही मिल सकता, अतः बुद्धिमानोंको चाहिये कि वे इन सब बातों पर भले प्रकार विचार कर आत्माके चिंतवन आदि कार्योंमें अच्छी तरह यत्न करे ।

भावार्थः—आत्माकी ओर ध्यान लगानेसे विशदमति-भेदविज्ञानकी प्राप्ति होती है । भेदविज्ञानसे शुद्धचिद्रूपका लाभ और उससे फिर निराकुलतारूप सुखका प्राप्ति होती है; परंतु जब तक धर्मकार्य, पुस्तकें और उनकी कीर्त्ति आदिकी रक्षामें व्यग्रता रहेगी तब तक उपर्युक्त एक भी बातकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये जिन महाशयोंको शुद्धचिद्रूप आदि पदार्थोंकी प्राप्तिकी अभिलाषा है उन्हें चाहिये कि वे शांतिचित्त हो परमार्थ प्रयत्न करें ।। १२ ।।

अहं भ्रांतः पूर्वं तदनु च जगत् मोहवशतः
परद्रव्ये चितासततकरणादाभवमहो ।
परद्रव्यं मुक्त्वा विहरति चिदानन्दनिलये
निजद्रव्ये यो वै तमिह पुरुषं चेतसि दधे ।। १३ ।।

अर्थः—मोहके फंदमें पड़कर पर द्रव्योंकी चिन्ता और उन्हें अपनानेसे प्रथम तो मैंने संसारमें परिभ्रमण किया और फिर मेरे पश्चात् यह समस्त जनसमूह घूमा, इसलिये जो महापुरुष परद्रव्योंसे ममता छोड़कर चिदानन्दस्वरूप निज द्रव्यमें विहार करनेवाला है—निज द्रव्यका ही मनन, स्मरण, ध्यान करनेवाला है, उस महात्माको मैं अपने चित्तमें धारण करता हूँ ।

भावार्थः—इस संसारमें सबसे बलवान मोहनीय कर्म है और उसके फंदेमें पड़कर जीव नाना प्रकारके क्लेश भोगते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहते हैं । इसी मोहके फंदेमें फँसकर परद्रव्योंकी चितामें व्यग्र हो मैंने बहुतसे काल तक इस संसारमें भ्रमण किया और मेरे पीछे और भी बहुतसे जीव घूमते रहे; परन्तु इस संसारमें ऐसे भी बहुतसे मनुष्य हैं जिन्होंने मोहको सर्वथा निर्मूल कर दिया है और समस्त परद्रव्योंसे सर्वथा ममत्व छोड़कर आत्मिक शुद्धचिद्रूपमें चित्त स्थिर किया है, इसलिये अब मैं ऐसे ही महापुरुषोंकी शरण लेना चाहता हूँ। इन्हींकी शरणमें जानेसे मेरा कल्याण होगा ।। १३ ।।

हित्वा यः शुद्धचिद्रूपस्मरणं हि चिकीर्षति ।
अन्यत्कार्यमसौ चितारत्नमश्मग्रहं कुधीः ।। १४ ।।

अर्थः—जो दुर्बुद्धि जीव शुद्धचिद्रूपका स्मरण न कर अन्य कार्य करना चाहते हैं वे चिंतामणि रत्नका त्यागकर पाषाण ग्रहण करते हैं ऐसा समझना चाहिये ।। १४ ।।

स्वाधीनं च सुखं ज्ञानं परं स्यादात्मचिंतनात् ।
तन्मुक्त्वाः प्राप्तुमिच्छंति मोहतस्तद्विलक्षणं ।। १५ ।।

अर्थः—इस आत्माके चिन्तवनसे—शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे निराकुलतारूप सुख और उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति होती है; परंतु मूढ़ जीव मोहके वश होकर आत्माका चिन्तवन करना छोड़ देते हैं और उससे विपरीत कार्य 'जो कि अनन्त क्लेश देनेवाला है' करते हैं ।। १५ ।।

यावन्मोहो बली पुंसि दीर्घसंसारतापि च ।
न तावत् शुद्धचिद्रूपे रुचिरत्यंतनिश्चला ।। १६ ।।

अर्थः—जब तक आत्मामें महा बलवान मोह है और दीर्घसंसारता चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करना बाकी है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तक तक इसका कभी भी शुद्धचिद्रूपमें निश्चलरूपसे प्रेम नहीं हो सकता ।। १६ ।।

अंधे नृत्यं तपोऽज्ञे गदविधिरतुला स्वायुषो वाऽवसाने
गीतं बाधिर्ययुक्ते वपनमिह यथाऽयूषरे वार्यतृष्णे ।
स्निग्धे चित्राण्यभव्ये रुचिविधिरनघः कुंकुमं नीलवस्त्रे
नात्मप्रीतौ तदाख्या भवति किल वृथा निः प्रतीतौ सुमंत्रः ॥१७॥

अर्थः—जिस प्रकार अंधेके लिये नाच, अज्ञानीके लिये तप, आयुके अंतमें औषधिका प्रयोग, बहिरेके लिये गीतोंका गाना, ऊसर भूमिमें अन्नका बोना, बिना प्यासे मनुष्यके लिये जल देना, चिकनी वस्तु पर चित्रका खींचना, अभव्यको धर्मकी रुचि कहना, काले कपड़े पर केसरिया रंग और प्रतीति रहित पुरुषके लिये मंत्र प्रयोग करना, कार्यकारी नहीं; उसी प्रकार जिसको आत्मामें प्रेम नहीं उस मनुष्यको आत्माके ध्यान करनेका उपदेश भी कार्यकारी नहीं–सब व्यर्थ है ।

भावार्थः—जिस प्रकार अंधा नाच नहीं देख सकता, अज्ञानी तप नहीं कर सकता, आयुका अंत हो जाने पर दवा काम नहीं दे सकती, बहिरा गीत नहीं सुन सकता, ऊसर भूमिमें अन्न नहीं उग सकता, बिना प्यासे मनुष्यके लिये जल फल नहीं दे सकता, चिकने पदार्थ पर तस्वीर नहीं खिच सकती, अभव्यको धर्म रुचि नहीं हो सकती, काले कपड़े पर केसरिया रंग नहीं चढ़ सकता और अविश्वासी मनुष्यके लिये मंत्र काम नहीं दे सकता । उसीप्रकार आत्मामें प्रेम न करनेवाला मनुष्य भी आत्मध्यानके उपदेशसे कुछ लाभ नहीं उठा सकता, इसलिये जीवोंको चाहिये कि वे अवश्य आत्मामें प्रेम करें ।। १७ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्मरंति परद्रव्याणि मोहान्मूढाः प्रतिक्षणं ।
शिवाय स्वं चिदानन्दमयं नैव कदाचन ॥ १८ ॥

अर्थः—मूढ़ मनुष्य मोहके वश हो प्रति समय परद्रव्यका स्मरण करते हैं; परन्तु मोक्षके लिये निज शुद्धचिदानन्दका कभी भी ध्यान नहीं करते ॥ १८ ॥

मोह एव परं वैरी नान्यः कोऽपि विचारणात् ।
ततः स एव जेतव्यो बलवान् धीमताऽऽदरात् ॥ १९ ॥

अर्थः—विचार करनेसे मालूम हुआ है कि यह मोह ही जीवोंका अहित करने वाला महा बलवान बैरी है । इसीके आधीन हो जीव नाना प्रकारके क्लेश भोगते रहते हैं, इसलिये जो मनुष्य विद्वान हैं—आत्माके स्वरूपके जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे सबसे पहिले इस मोहको जीतें—अपने वशमें करें ॥ १९ ॥

भवकूपे महामोहपंकेऽनादिगतं जगत् ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानरज्ज्वा सर्वं समुद्धरे ॥ २० ॥

अर्थः—यह समस्त जगत अनादिकालसे संसाररूपी विशाल कूपके अन्दर महामोहरूपी कीचड़में फँसा हुआ है, इसलिये अब मैं शुद्धचिद्रूपके ध्यानरूपी मजबूत रस्सीके द्वारा इसका उद्धार करूंगा ।

भावार्थः—जिस प्रकार कुवेमें कीचड़के अन्दर फँसा हुआ पदार्थ रस्सीके सहारे ऊपर खींच लिया जाता हैं । उसीप्रकार यह समस्त जगत इस संसारमें महामोहसे मूढ़ हो रहा है और इसे अपने हित-अहितका जरा भी ध्यान नहीं है, इसलिये शुद्धचिद्रूपके ध्यानकी सहायतासे मैं इसका उद्धार करना चाहता हूँ ॥ २० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानादन्यत्कार्यं हि मोहजं ।
तस्माद् बन्धस्ततो दुःखं मोह एव ततो रिपुः ॥ २१ ॥

अर्थः—संसारमें सिवाय शुद्धचिद्रूपके ध्यानके, जितने कार्य हैं सब मोहज—मोहके द्वारा उत्पन्न हैं। सबकी उत्पत्तिमें प्रधान कारण मोह है तथा मोहसे कर्मोंका बन्ध और उससे अनन्ते क्लेश भोगने पड़ते हैं, इसलिये सबसे अधिक जीवोंका वैरी मोह ही है ॥ २१ ॥

मोहं तज्जातकार्याणि संगं हित्वा च निर्मलं ।
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानं कुरु त्यक्त्वान्यसंगतिं ॥ २२ ॥

अर्थः—अतः जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे मोह और उससे उत्पन्न हुये समस्त कार्योंका सर्वथा त्याग कर दे—उनकी ओर झांककर भी न देखे और ससस्त परद्रव्योंसे ममता छोड़ केवल शुद्धचिद्रूपका ही मनन, ध्यान और स्मरण करे ॥ २२ ॥

इति मुमुक्षु भट्टारक श्री ज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपध्यानाय मोहत्यागप्रतिपादको नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपके ध्यान करनेके लिये मोहके त्यागका वर्णन करनेवाला नववाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपके ध्यानार्थ अहंकार–ममकारताके त्यागका उपदेश

निरंतरमहंकारं मूढाः कुर्वंति तेन ते ।
स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं विलोकंते न निर्मलं ॥ १ ॥

अर्थः—मूढ़ पुरुष निरंतर अहंकारके वश रहते हैं–अपने से बढ़कर किसीको भी नहीं समझते, इसलिये अतिशय निर्मल अपने शुद्धचिद्रूपकी ओर वे जरा भी नहीं देख पाते ।

भावार्थः—अहंकार, शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिका बाधक है । अहंकारी मनुष्य रूप आदिके मदमें ही उन्मत्त रहते हैं । शुद्धचिद्रूपकी ओर झांककर भी नहीं देखने पाते, इसलिये जो महानुभाव शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे अहंकारका सर्वथा परित्याग कर दें ।। १ ।।

देहोऽहं कर्मरूपोऽहं मनुष्योऽहं कृशोऽकृशः ।
गौरोऽहं श्यामवर्णोऽहमद्विजोऽहं द्विजोऽथवा ॥ २ ॥
अविद्वानप्यहं विद्वान् निर्धनो धनवानहं ।
इत्यादि चिंतनं पुंसामहंकारो निरुच्यते ॥ ३ ॥ युग्मं ॥

अर्थः—मैं देहस्वरूप हूँ, कर्मस्वरूप हूँ, मनुष्य हूँ, कृश हूँ, स्थूल हूँ, गोरा हूँ, काला हूँ, ब्राह्मणसे भिन्न क्षत्रिय, वैश्य आदि हूँ, ब्राह्मण हूँ, मूर्ख हूँ, विद्वान हूँ, निर्धन हूँ और धनवान हूँ, इत्यादिरूपसे मनमें विचार करना अहंकार है । मूढ़ मनुष्य इसी अहंकारमें चूर रहते हैं ।। २–३ ।।

ये नरा निरहंकारं वितन्वंति प्रतिक्षणं ।
अद्वैतं ते स्वचिद्रूपं प्राप्नुवंति न संशयः ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—जो मनुष्य प्रति समय निरहंकारताकी बुद्धि करते रहते हैं, अहंकार नहीं करते; उन्हें निस्संदेह अद्वैतस्वरूप स्वचिद्रूपकी प्राप्ति होती है ।। ४ ।।

न देहोऽहं न कर्माणि न मनुष्यो द्विजोऽद्विजः ।
नैव स्थूलो कृशो नाहं किंतु चिद्रूपलक्षणः ॥ ५ ॥
चिंतनं निरहंकारो भेदविज्ञानिनामिति ।
स एव शुद्धचिद्रूपलब्धये कारणं परं ॥ ६ ॥ युग्मं ॥

अर्थः—जो मनुष्य भेदविज्ञानी हैं, जड़ और चेतनका वास्तविक भेद जानते हैं उनका न मैं देहस्वरूप हूँ, न कर्म-स्वरूप हूँ, न मनुष्य हूँ, न ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय आदि हूँ, न स्थूल हूँ, और न कृश हूँ; किन्तु शुद्धचिद्रूप हूँ—इस प्रकारका चिंतवन करना निरहंकार "अहंकारका अभाव" है और यह निरहंकार शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें असाधारण कारण है ।। ५–६ ।।

ममत्वं ये प्रकुर्वंति परवस्तुषु मोहिनः ।
शुद्धचिद्रूपसंप्राप्तिस्तेषां स्वप्नेऽपि नो भवेत् ॥ ७ ॥

अर्थः—जो मूढ़ जीव परपदार्थोंमें ममता रखते हैं, उन्हें अपनाते हैं—उन्हें स्वप्नमें भी शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

भावार्थः—संसारमें सिवाय शुद्धचिद्रूपके अपना कोई पदार्थ नहीं । स्त्री, पुत्र, मित्र आदि सब परपदार्थ हैं, इसलिये जो जीव निजशुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति करना चाहते हैं उन्हें परपदार्थोंमें किसी प्रकारका ममत्व नहीं रखना चाहिये ।।७।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुभाशुभानि कर्माणि मम देहोऽपि वा मम ।
पिता माता स्वसा भ्राता मम जायात्मजात्मजः ॥ ८ ॥

गौरश्वोऽजा गजो रा विरापणं मंदिरं मम ।
पूः राजा मम देशश्च ममत्वमिति चिंतनम् ॥ ९ ॥ युग्मं ॥

अर्थः—शुभ–अशुभ कर्म मेरे हैं, शरीर, पिता, माता, बहिन, भाई, स्त्री, पुत्र, गाय, अश्व, बकरी, हाथी, धन, पक्षी, बाजार, मन्दिर, पुर, राजा और देश मेरे हैं । इस प्रकारका चिंतवन ममत्व है अर्थात् इनको अपनाना ममत्व कहलाता है ॥ ८–९ ॥

निर्ममत्वेन चिद्रूपप्राप्तिर्जाता मनीषिणां ।
तस्मात्तदर्थिना चिंत्यं तदेवैकं मुहूर्मुहुः ॥ १० ॥

अर्थः—जिन किन्हीं विद्वान मनुष्योंको शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हुई है उन्हें शरीर आदि परपदार्थोंमें ममता न रखनेसे ही हुई है, इसलिये जो महानुभाव शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे निर्ममत्वका ही बार बार चिन्तवन करें, उसीकी ओर अपनी दृष्टि लगाये ॥ १० ॥

शुभाशुभानि कर्माणि न मे देहोपि नो मम ।
पिता माता स्वसा भ्राता न मे जायात्मजात्मजः ॥ ११ ॥

गौरश्वो गजो रा बिरापणं मन्दिरं न मे ।
पूराजा मे न देशो निर्ममत्वमिति चिंतनं ॥ १२ ॥ युग्मं ॥

अर्थः—शुभ–अशुभ कर्म मेरे नहीं हैं, देह, पिता, माता, बहिन, भाई, स्त्री, पुत्री, पुत्र, गाय, अश्व, हाथी, धन, पक्षी, बाजार, मन्दिर, पुर, राजा और देश भी मेरे नहीं । इस प्रकारका जो मनमें चिन्तवन करना है, वह निर्ममत्व है ॥ ११–१२ ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ममेति चिंतनाद् बन्धो मोचनं न ममेत्यतः ।
बन्धनं द्व्यक्षराभ्यां च मोचनं त्रिभिरक्षरैः ॥ १३ ॥

अर्थः—'स्त्री–पुत्र आदि मेरे हैं' इस प्रकारके चिन्तनसे कर्मोका बन्ध होता है और 'ये मेरे नहीं'—ऐसा चिंतनसे कर्म नष्ट होते हैं, इसलिये 'मम' (मेरे) ये दो अक्षर तो कर्मबन्धके कारण हैं और 'मम न' (मेरे नहीं) इन तीन अक्षरोंके चितवन करनेसे कर्मोकी मुक्ति होती है ॥ १३ ॥

निर्ममत्वं परं तत्त्वं ध्यानं चापि व्रतं सुखं ।
शीलं खरोधनं तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १४ ॥

अर्थः—यह निर्ममत्व सर्वोत्तम तत्त्व है, परम ध्यान, परम व्रत, परम सुख, परम शील है और इससे इन्द्रियोंके विषयोंका निरोध होता है, इसलिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि वे इस शुद्धचिद्रूपका ही ध्यान करें ॥ १४ ॥

याता ये यांति यास्यंति भदंता मोक्षमव्ययं ।
निर्ममत्वेन ये तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १५ ॥

अर्थः—जो मुनिगण मोक्ष गये, जा रहे हैं और जायेंगे उनके मोक्षकी प्राप्तिमें यह निर्ममत्व ही कारण है इसीकी कृपासे उन्हें मोक्षकी प्राप्ति हुई है, इसलिये मोक्षाभिलाषियोंको निर्ममत्वका ही ध्यान करना चाहिये ॥ १५ ॥

निर्ममत्वे तपोपि स्यादुत्तमं पंचमं व्रतं ।
धर्मोऽपि परमस्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १६ ॥

अर्थः—परपदार्थोंकी ममता न रखनेसे–भले प्रकार निर्ममत्वके पालन करनेसे, उत्तम तप और पाँचवें निष्परिग्रह नामक व्रतका पूर्णरूपसे पालन होता है, सर्वोत्तम धर्मकी भी प्राप्ति होती है इसलिये यह निर्ममत्व ही ध्यान करने योग्य है ॥ १६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्ममत्वाय न क्लेशो नान्ययांचा न चाटनं ।
न चिंता न व्ययस्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत ॥ १७ ॥

अर्थः—इस निर्ममत्वके लिये न किसी प्रकारका क्लेश भोगना पड़ता है, न किसीसे कुछ मांगना और न चाटुकार (चापलूसी) करना पड़ता है । किसी प्रकारकी चिन्ता और द्रव्यका व्यय भी नहीं करना पड़ता, इसलिये निर्मत्व ही ध्यान करनेके योग्य है ॥ १७ ॥

नास्रवो निर्ममत्वेन न बन्धोऽशुभकर्मणां ।
नासंयमो भवेत्तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १८ ॥

अर्थः—इस निर्ममत्वसे अशुभ कर्मका आस्रव और बन्ध नहीं होता, संयममें भी किसी प्रकारकी हानि नहीं आती—वह भी पूर्णरूपसे पलता है, इसलिये यह निर्ममत्व ही चिन्तवन करनेके योग्य पदार्थ है ॥ १८ ॥

सद्दृष्टिर्ज्ञानवान् प्राणी निर्ममत्वेन संयमी ।
तपस्वी च भवेत् तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत् ॥ १९ ॥

अर्थः—इस निर्ममत्वकी कृपासे जीव सम्यग्दृष्टि, ज्ञानवान, संयमी और तपस्वी होता है, इसलिये जीवोंको निर्ममत्वका ही चिन्तवन कार्यकारी है ॥ १९ ॥

रागद्वेषादयो दोषा नश्यंति निर्ममत्वतः ।
साम्यार्थी सततं तस्मान्निर्ममत्वं विचिंतयेत ॥ २० ॥

अर्थः—इस निर्ममत्वके भले प्रकार पालन करनेसे राग द्वेष आदि समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं, इसलिये जो मनुष्य समता (शांति)के अभिलाषी हैं—अपनी आत्माको संसारके दुःखोंसे मुक्त करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपने मनको सब ओरसे हटाकर शुद्धचिद्रूपकी ओर लगावें—उसीका भले प्रकार मनन, ध्यान और स्मरण करें ॥ २० ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

विचार्यत्थमहंकारममकारौ विमुंचति ।
यो मुनिः शुद्धचिद्रूपध्यानं स लभते त्वरा ॥ २१ ॥

अर्थः—इस प्रकार जो मुनि अहंकार और ममकारको अपने वास्तविक स्वरूप–शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके नाश करने वाले समझ उनका सर्वथा त्याग कर देता है, अपने मनको रंचमात्र भी उनकी ओर जाने नहीं देता उसे शीघ्र ही संसारमें शुद्धचिद्रूपके ध्यानकी प्राप्ति हो जाती है ।

भावार्थः—हमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिसे ही निराकुलतामय सुख मिल सकता है, इसलिये उसीका ध्यान करना आवश्यक है; परन्तु जब तक स्त्री पुत्र आदि पर पदार्थ मेरे हैं और मैं उनका हूँ या मैं देह स्वरूप हूँ, कर्म स्वरूप हूं ऐसा विचार चित्तमें बना रहता है तब तक कदापि शुद्धचिद्रूपका ध्यान नहीं हो सकता, इसलिये जो मुनिगण शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके अभिलाषी हैं इन्हें चाहिये कि वे अहंकार, ममकारका सर्वथा त्याग कर दें और शुद्धचिद्रूपके ध्यानकी ओर अपना चित्त झुकावें ।। २६ ।।

इति मुमुक्षु भट्टारक ज्ञानभूषण विरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपध्यानायाहंकारममकारत्याग-प्रतिपादको दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपका ध्यान करनेके लिये अहंकार ममकारके त्यागका बतलानेवाला दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्यारहवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपके रुचिवन्तकी विरलताका वर्णन

शांताः पांडित्ययुक्ता यमनियमबलत्यागरैवृत्तवन्तः ।
सद्गोशीलास्तपोर्चानुतिनतिकरणा मौनिनः संत्यसंख्याः ।
श्रोतारश्चाकृतज्ञा व्यसनखजयिनोऽत्रोपसर्गेऽपिधीराः
निःसंगाः शिल्पिनः कश्चन तु विरलः शुद्धचिद्रूपः ॥ १ ॥

अर्थः—यद्यपि संसारमें शांतिचित्त, विद्वान, यमवान, नियमवान, बलवान, धनवान, चारित्रवान्, उत्तमवक्ता, शीलवान्, तप, पूजा, स्तुति और नमस्कार करनेवाले, मौनी, श्रोता, कृतज्ञ, व्यसन और इन्द्रियोंके जीतने वाले, उपसर्गोंके सहनेमें धीरवीर, परिग्रहोंसे रहित और नाना प्रकारकी कलाओंके जानकर असंख्यात् मनुष्य हैं; तथापि शुद्धचिद्रूपके स्वरूपमें अनुरक्त कोई एक विरला ही है ।

भावार्थः—यह संसार नाना प्रकारके जीवोंका स्थान है । इसमें बहुतसे मनुष्य शांतचित्त हैं, तो बहुतसे विद्वान हैं, बहुतसे यमवान्, नियमवान्, बलवान, दानवान, धनवान और चरित्रवान् हैं । अनेक उत्तमवक्ता, शीलवान, तप, पूजा, स्तुति और नमस्कार करनेवाले भी हैं, बहुतसे मौनी, श्रोता आदि भी हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूपके स्वरूपमें लीन बहुत ही कम हैं ॥ १ ॥

ये चैत्यालयचैत्यदानमहसद्यात्रा कृतौ कौशला
नानाशास्त्रविदः परीषहसहा रक्ताः परोपकृतौ ।
निःसंगाश्च तपस्विनोपि बहवस्ते संति ते दुर्लभा
रागद्वेषविमोहवर्जनपराश्चित्त्वलीनाश्च ये ॥ २ ॥

अर्थः—संसारमें अनेक मनुष्य जिनमंदिरोंका निर्माण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमा दान, उत्सव और तीर्थोंकी यात्राके करनेमें प्रवीण हैं, नाना शास्त्रके जानकार, परिग्रहोंके सहन करनेवाले, परोपकारमें रत, समस्त प्रकारके परिग्रहोंसे रहित और तपस्वी भी हैं; परन्तु रागद्वेष और मोहके सर्वथा नाश करनेवाले एवं शुद्धचिद्रूपरूपी तत्त्वमें लीन बहुत ही थोड़े हैं ॥ २ ॥

गणकचिकित्सकतार्किकपौराणिकवास्तु शब्दशास्त्रज्ञाः ।
संगीतादिषु निपुणाः सुलभा न हि तत्त्ववेत्तारः ॥ ३ ॥

अर्थः—ज्योतिषी, वैद्य, तार्किक, पुराणके वेत्ता, पदार्थ विज्ञानी, व्याकरशास्त्रके जानकार और संगीत आदि कलाओंमें भी प्रवीण बहुतसे मनुष्य हैं; परन्तु तत्त्वोंके जानकार नहीं ॥ ३ ॥

सुरूपबललावण्यधनापत्यगुणान्विताः ।
गांभीर्यधैर्यधौरेयाः संत्यसंख्या न चिद्रताः ॥ ४ ॥

अर्थः—उत्तम रूप, बल, लावण्य, धन, संतान और गुणोंसे भी बहुतसे मनुष्य भूषित हैं, गंभीर, धीर और वीर भी असंख्यात हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें लीन बहुत ही कम मनुष्य हैं ॥ ४ ॥

जलद्यूतवनस्त्रीवियुद्ध्गोलकगीतिषु ।
क्रीडंतोऽत्र विलोक्यंते घनाः कोऽपि चिदात्मनि ॥ ५ ॥

अर्थः—अनेक मनुष्य जलक्रीड़ा, जुआ, वन विहार, स्त्रियोंके विलास, पक्षियोंके युद्ध, गोलीमार क्रीड़ा और गायन आदिमें भी दत्तचित्त दिखाई देते हैं; परन्तु चिदात्मामें विहार करनेवाला कोई विरला ही दिखता है ॥ ५ ॥

सिंहसर्पगजव्याघ्राहितादीनां वशीकृतौ ।
रताः संत्यत्र बहवो न ध्याने स्वचिदात्मनः ॥ ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—इस संसारमें बहुतसे मनुष्य, सिंह, सर्व, हाथी, व्याघ्र और अहितकारी शत्रु आदिको भी वश करनेवाले हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूपके ध्यान करनेवाले नहीं ।। ६ ।।

जलाग्निरोगराजाहिचौरशत्रुनभस्वतां ।
दृश्यंते स्तंभने शक्ताः नान्यस्य स्वात्मचिंतया ॥ ७ ॥

अर्थः—जल, अग्नि, रोग, राजा, सर्प, चोर, वैरी और पवनके स्तंभन करनेमें–उनकी शक्तिको दबानेमें भी बहुतसे मनुष्य समर्थ हैं; परन्तु आत्मध्यान द्वारा पर पदार्थोंसे अपना मन हटानेके लिये सर्वथा असर्थ हैं ।

भावार्थः—यद्यपि जल, अग्नि, रोग, राजा, सर्प, चोर और वैरी आदि पदार्थ संसारमें अत्यंत भयंकर हैं । इनसे अपनी रक्षा कर लेना अति कठिन बात है; तथापि बहुतसे ऐसे भी बलवान मनुष्य हैं जो इन्हें देखते ही देखते वश कर लेते हैं; परन्तु वे भी अपने आत्मध्यानके बलसे परपदार्थोंसे ममत्व दूर करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं ।। ७ ।।

प्रतिक्षणं प्रकुर्वंति चिंतनं परवस्तुनः ।
सर्वे व्यामोहिता जीवाः कदा कोऽपि चिदात्मनः ॥ ८ ॥

अर्थः—इस संसारमें रहनेवाले जीव प्रायः मोहके जालमें जकड़े हुये हैं । उन्हें अपनी सुध–बुधका कुछ भी होश हवस नहीं है. इसलिये प्रतिक्षण वे परपदार्थोंका ही चिन्तवन करते रहते हैं, उन्हें ही अपनाते हैं; परन्तु शुद्धचिदात्माका कोई विरला ही चिन्तवन करता है ।। ८ ।।

दृश्यंते बहवो लोके नानागुणविभूषिताः ।
विरलाः शुद्धचिद्रूपे स्नेहयुक्ता व्रतान्विताः ॥ ९ ॥

अर्थः—बहुतसे मनुष्य संसारमें नाना प्रकारके गुणोंसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूषित रहते हैं; परन्तु ऐसे मनुष्य विरले ही हैं जो शुद्ध चिद्रूपमें स्नेह करनेवाले और व्रतोंसे भूषित हों ॥ ९ ॥

एकेंद्रियादसंज्ञाख्यापूर्णपर्यंतदेहिनः ।
अनन्तानन्तमाः संति तेषु न कोऽपि तादृशः ॥ १० ॥
पंचाक्षसंज्ञिपूर्णेषु केचिदासन्नभव्यतां ।
नृत्वं चालभ्य तादृक्षा भवंत्यार्याः सुबुद्धयः ॥ ११ ॥

अर्थः—एकेन्द्रियसे लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत जीव इस संसारमें अनन्तानन्त भरे हुये हैं उनमें इस तरहका सामर्थ्य ही नहीं है; परन्तु जो जीव पंचेन्द्रिय संज्ञी–मनसहित हैं उनमें भी जो आर्य–स्वपर स्वरूपके भले प्रकार जानकार हैं और आसन्नभव्य–बहुत शीघ्र मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं वे ही ऐसा कर सकते हैं ॥ १०–११ ॥

शुद्धचिद्रूपसंलीनाः सव्रता न कदाचन ।
नरलोकबहिर्भागेऽसंख्यात द्वीपवार्धिषु ॥ १२ ॥

अर्थः—अढाई द्वीप तक मनुष्य क्षेत्र है और उससे आगे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं । उनमें रहनेवाले भी जीव कभी भी शुद्धचिद्रूपमें लीन और (महा) व्रतोंसे भूषित नहीं हो सकते ॥ १२ ॥

अधोलोके न सर्वस्मिन्नूर्ध्वलोकेऽपि सर्वतः ।
ते भवन्ति न ज्योतिष्के हा हा क्षेत्रस्वभावतः ॥ १३ ॥

अर्थः—समस्त अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और ज्योतिलोकमें भी क्षेत्रके स्वभावसे जीव शुद्धचिद्रूपका ध्यान और व्रतोंका आचरण नहीं कर सकते ॥ १३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरलोकेपि ये जाता नराः कर्मवशाद् घनाः ।
भोगभूम्लेच्छखंडेषु ते भवन्ति न तादृशः ॥ १४ ॥

अर्थः—मनुष्य क्षेत्रमें भी जीव भोगभूमि और म्लेच्छ-खंडमें उत्पन्न हुये हैं उन्हें भी सघनरूपसे कर्मों द्वारा जकड़े हुये होनेके कारण शुद्धचिद्रूपका ध्यान और व्रतोंका आचरण करनेका अवसर प्राप्त नहीं होता ॥ १४ ॥

आर्यखंडभवाः केचिद् विरलाः संति तादृशाः ।
अस्मिन् क्षेत्रे भवा द्वित्राः स्युरद्य न कदापि वा ॥ १५ ॥

अर्थः—परन्तु जो जीव आर्यखण्डमें उत्पन्न हुए हैं, उनमेंसे भी विरले ही शुद्धचिद्रूपके ध्यानी और व्रतोंके पालक होते हैं तथा इस भरतक्षेत्रमें उत्पन्न होने वाले तो इस समय दो तीन ही हैं अथवा हैं ही नहीं ॥ १५ ॥

अस्मिन् क्षेत्रेऽधुना संति विरला जैनपाक्षिकाः ।
सम्यक्त्वसहितास्तत्र तत्राणुव्रतधारिणः ॥ १६ ॥
महाव्रतधरा धीराः संति चात्यंत दुर्लभाः ।
तत्त्वातत्त्वविदस्तेषु चिद्रक्तोऽत्यंतदुर्लभः ॥ १७ ॥

अर्थः—इस क्षेत्रमें प्रथम तो इस समय सम्यग्दृष्टि पाक्षिक जैनी ही विरले हैं यदि वे भी मिल जांय तो अणुव्रत धारी मिलने कठिन हैं । अणुव्रत धारी भी हों तो धीर वीर महाव्रत धारी दुर्लभ हैं । यदि वे भी हों तो तत्त्व अतत्त्वोंके जानकर (बहु श्रुतज्ञानी) बहुत कम हैं । यदि वे भी प्राप्त हो जाँय तो शुद्धचिद्रूपमें रत मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ हैं ।

भावार्थः—इस संसारमें सदा अनन्त जीव निवास करते रहते हैं । उनमें जिनवचन और जिनेन्द्रदेवके श्रद्धानी पाक्षिक मनुष्य बहुत कम हैं; उनसे भी कम अणुव्रतोंके पालक हैं,

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

उनसे भी कम धीर-वीर महाव्रती हैं, महाव्रतियोंसे कम तत्त्व-अतत्त्वोंके जानकर हैं और उनसे भी कम चिद्रूपके प्रेमी हैं, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिको अति दुर्लभ मान उसीका ध्यान करें ।। १६-१७ ।।

तपस्विपात्रविद्वत्सुः गुणिसद्गतिगामिषु ।
वंद्यस्तुत्येषु विज्ञेयः स एवोत्कृष्टतां गतः ।। १८ ।।

अर्थः—जो महानुभाव शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें अनुरक्त हैं वे ही तपस्वी उत्तमपात्र, विद्वान, गुणी, समीचीन मार्गके अनुगामी और उत्तम वंदनीक स्तुत्य मनुष्योंमें उत्कृष्ट हैं ।।१८।।

उत्सर्पिण्यवसर्पणकालेऽनाद्यंतवर्जिते स्तोकाः ।
चिद्रक्ता व्रतयुक्ता भवन्ति केचित्कदाचिच्च ।। १९ ।।

अर्थः—इस अनादि-अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालमें शुद्धचिद्रूपके ध्यानी और व्रतोंके धारक बहुत ही कम मनुष्य होते हैं और वे कभी किसी समय, प्रति समय नहीं ।

भावार्थः—जिसमें मनुष्योंकी आयु, बल, वीर्य, आदि वृद्धिगत ही वह उत्सर्पिणी काल है और जिसमें आयु आदिकी कमी होती जाय उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं । यह जो कालका अनादि-अनन्त प्रवाह है उसमें कभी किसी समय शुद्धचिद्रूपके ध्यानी और व्रतोंके पालक मनुष्य दृष्टिगोचर होते हैं प्रति समय नहीं तथा वे भी बहुत कम, अधिक नहीं ।। १९ ।।

मिथ्यात्वादिगुणस्थानचतुष्के संभवन्ति न ।
शुद्धचिद्रूपके रक्ता व्रतिनोपि कदाचन ।। २० ।।
पंचमादिगुणस्थानदशके तादृशोंऽगिनः ।
स्युरिति ज्ञानिना ज्ञेयं स्तोकजीवसमाश्रिते ।। २१ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान पर्यन्त जोव कभी भी शुद्धचिद्रूपके ध्यानी और व्रती नहीं हो सकते; किन्तु देशविरत पंचम गुणस्थानसे लेकर अयोग केवली नामक चौदहवें गुणस्थान पर्यन्तके जीव ही शुद्धचिद्रूपके ध्यानी और व्रती होते हैं, इसलिए शुद्धचिद्रूपका ध्यान और व्रतोंका ज्ञान बहुत थोड़े जीवोंमें है ।

भावार्थः—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरतको आदि लेकर अयोगकेवलीपर्यन्त चौदह गुणस्थान हैं । उनमें आदिके चार गुणस्थानवर्ती जीवोंके न तो शुद्धचिद्रूपमें लीनता हो सकती है और न वे किसी प्रकारके व्रत ही पाल सकते हैं; क्योंकि चौथे गुणस्थानमें आकर केवल श्रद्धान ही होता है; परन्तु पाँचवेंसे लेकर चौदहवें गुणस्थान तकके जीव व्रती शुद्धचिद्रूपके ध्यानी होते हैं, इसलिए शुद्धचिद्रूपके प्रेमी और व्रती मनुष्य बहुत ही थोडे हैं ।। २०–२१ ।।

दृश्यंते गन्धनादावनुजसुतसुताभीरुपित्रंबिकासु
ग्रामे गेहे खभोगे नगनगरखगे वाहने राजकार्ये ।
आहार्येऽगे वनादौ व्यसनकृषिमुखेकूपवापीतडागे
रक्ताश्चप्रेषणादौ यशसि पशुगणे शुद्धचिद्रूपके न ॥ २२ ॥

अर्थः—इस संसारमें कोई मनुष्य तो इत्र, फुलेल आदि सुगंधित पदार्थोंमें अनुरक्त हैं और बहुतसे छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री, पिता, माता, गांव, घर, इन्द्रियोंके भोग, पर्वत, नगर, पक्षी, सवारी, राजकार्य, खाने योग्य पदार्थ, शरीर, वन, व्यसन, खेती, कूआ, वावड़ी और तालाबोंमें प्रेम करनेवाले हैं और बहुतसे अन्य मनुष्योंके इधर उधर भेजनेमें, यश और पशु गणोंकी रक्षा करनेमें अनुराग करनेवाले हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूपके अनुरागी कोई भी मनुष्य नहीं हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—संसारमें मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकृतियोंके हैं और उन्हें प्रीति उत्पन्न करनेवाले पदार्थ भी भिन्न भिन्न हैं। अनेक मनुष्य ऐसे हैं जो इत्र, फुलेल आदि सुगंधित पदार्थोंको ही प्रिय और उत्तम मानते हैं। बहुतोंको छोटे भाई, पुत्र, पुत्री, स्त्री, पिता, माता, गांव, घर इन्द्रियोंके भोग, पर्वत, नगर, पक्षी, सवारी, राजाके कार्य, खाने योग्य पदार्थ, वन, व्यसन, खेती, कूप और तालाब अति प्यारे लगते हैं। बहुतसे भृत्योंको जहां-तहां भेजना यश प्राप्ति और पशुगणोंकी रक्षाको ही अति प्रिय मानते हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूपमें किसीका भी प्रेम नहीं है, इसलिए बाह्य-पदार्थोंमें व्यर्थ मुग्ध होकर आत्मिक शुद्धचिद्रूपकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते ॥ २२ ॥

**इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषणविरचितायां तत्त्वज्ञान-
तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपासक्तो विरल इति-
प्रतिपादक एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥**

**इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित
तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें "शुद्धचिद्रूपके प्रेमी बिरले
ही हैं" इस बातको प्रतिपादन करनेवाला
ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ११ ॥**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारहवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके असाधारणकारण रत्नत्रय

रत्नत्रयोपलंभेन बिना शुद्धचिदात्मनः ।
प्रादुर्भावो न कस्यापि श्रूयते हि जिनागमे ॥ १ ॥

अर्थः—जैनशास्त्रसे यह बात जानी गई है कि बिना रत्नत्रयको प्राप्त किए आज तक किसी भी जीवको शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति न हुई । सबको रत्नत्रयके लाभके बाद ही हुई है ।

भावार्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीन आत्माके गुणोंको रत्नत्रय कहते हैं और ये तीनों शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें असाधारण कारण हैं, इसलिए बिना रत्नत्रयके लाभके किसीको भी शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नहीं हो सकती । जिन्हें भी उसकी प्राप्ति हुई है उन्हें प्रथम रत्नत्रयकी प्राप्ति हो गई है और उसके बाद ही शुद्धचिद्रूपका लाभ हुआ है ॥ १ ॥

बिना रत्नत्रयं शुद्धचिद्रूपं न प्रपन्नवान् ।
कदापि कोऽपि केनापि प्रकारेण नरः क्वचित् ॥ २ ॥

अर्थः—बिना रत्नत्रयको प्राप्त किये आजतक किसी मनुष्यने कहीं और कभी भी किसी दूसरे उपायसे शुद्धचिद्रूपको प्राप्त न किया । सभी ने पहिले रत्नत्रयको पाकर ही शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति की है ॥ २ ॥

रत्नत्रयाद्विना चिद्रूपोपलब्धिर्न जायते ।
यथर्द्धिस्तपसः पुत्री पितुर्वृष्टिर्बलाहकात् ॥ ३ ॥

अर्थः—जिस प्रकार तपके बिना ऋद्धि, पिताके बिना पुत्री और मेघके बिना वर्षा नहीं हो सकती, उसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिना रत्नत्रयकी प्राप्तिके शुद्धचिद्रूपकी भी प्राप्ति नहीं हो सकती ।

भावार्थः—जिस प्रकार ऋद्धिकी प्राप्तिमें तप, पुत्रीकी उत्पत्तिमें पिता और वर्षाकी उत्पत्तिमें मेघ असाधारण (निमित्त) कारण हैं । बिना तप आदिके ऋद्धि आदिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें असाधारण कारण रत्नत्रय है, बिना इसे प्राप्त किए शुद्धचिद्रूपका लाभ नहीं हो सकता ।। ३ ।।

दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूपात्मप्रवर्त्तनं ।
युगपद् भण्यते रत्नत्रयं सर्वजिनेश्वरैः ॥ ४ ॥

अर्थः—भगवान जिनेश्वरने एक साथ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप आत्माकी प्रवृत्तिको रत्नत्रय कहा है ।

भावार्थः—गुण–गुणीसे कभी भिन्न नहीं हो सकते, इसलिए जितने गुण हैं वे अपने गुणियोंके स्वरूप हैं । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी आत्माके गुण हैं, न कभी ये आत्मा से जुदे रह सकते हैं और न सिवाय आत्माके किसी **पदार्थमें** ही पाए जाते हैं । हां, यह बात अवश्य है कि विरोधी कर्मोंकी मौजूदगीमें ये प्रच्छन्नरूपसे रहते हैं; परन्तु जिस समय इनके विरोधी कर्म नष्ट हो जाते हैं और ये तीनों एक साथ आत्मामें प्रकट हो जाते हैं उसी समयकी अवस्थाको रत्नत्रयकी प्राप्ति कहते हैं और रत्नत्रयकी प्राप्ति ही शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें असाधारण कारण है ।। ४ ।।

निश्चयव्यवहाराभ्यां द्विधा तत्परिकीर्त्तितं ।
सत्यस्मिन् व्यवहारे तन्निश्चयं प्रकटीभवेत् ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—यह रत्नत्रय निश्चय और व्यवहारके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। और व्यवहार रत्नत्रय हो वहाँ निश्चय रत्नत्रयकी प्रकटता होती है ॥ ५ ॥

भावार्थः—जीव आदि पदार्थोंका श्रद्धान, ज्ञान और कर्मोंके नष्ट करनेके लिये तप आदि करना—चारित्र, यह तो व्यवहार रत्नत्रय है और निश्चय रत्नत्रय आत्मस्वरूप है; परन्तु बिना व्यवहार रत्नत्रयके निश्चय रत्नत्रय कभी प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिये निश्चय रत्नत्रयमें व्यवहाररत्नत्रय कारण है ॥ ५ ॥

श्रद्धानं दर्शनं सप्ततत्त्वानां व्यवहारतः ।
अष्टांगं त्रिविधं प्रोक्तं तदौपशमिकादितः ॥ ६ ॥

अर्थः—व्यवहारनयसे सातों तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है और इसके आठ अंग हैं तथा औपशमिक, क्षायिक एवं क्षायोपशमिकके भेदसे तीन प्रकारका है।

भावार्थः—जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं, इनमें भगवान जिनेन्द्रने जो इनका स्वरूप बतलाया है वह उसीप्रकारसे है अन्यथा नहीं, इस प्रकारका श्रद्धान—विश्वास रखना व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इसके निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ अंग हैं और सम्यग्दर्शनके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक ये तीन भेद हैं ॥ ६ ॥

मता वस्तूनि सर्वाणि स्याच्छब्देन वचांसि च ।
चिता जगति व्याप्तानि पश्यन् सद्दृष्टिरुच्यते ॥ ७ ॥

अर्थः—जो महानुभाव सत्‌रूपसे समस्त पदार्थोंका विश्वास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है, अनेकांत रूपसे समस्त वचनोंको और ज्ञानसे समस्त जगतमें व्याप्त (सर्व पदार्थोंको) देखता है, श्रद्धता है, वह सम्यग्दृष्टि है ।

भावार्थः—मेरु आदि पदार्थ ऐसे हैं जिन्हें नेत्रसे नहीं देख सकते और सर्वज्ञके वचनसे उनके अस्तित्त्वका निश्चयकर उनकी मौजूदगीका श्रद्धान करना पड़ता है, इसलिये जिस महानुभावको मेरु आदिके अस्तित्त्वसे उनके मौजूदगीका श्रद्धान है । वचनोंमें किसी प्रकारका विरोध न आ जाय, इसलिये जो अनेकांतवाद पर पूर्ण विश्वास कर उसकी सहायतासे वचन बोलता है और यह समस्त जगत ज्ञानके गोचर है—इसके मध्यमें रहनेवाले पदार्थ ज्ञानके द्वारा स्पष्टरूपसे जाने जा सकते हैं । ऐसा जिसका पूर्ण श्रद्धान है वह व्यवहारनयसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है ॥ ७ ॥

स्वकीये शुद्धचिद्रूपे रुचिर्या निश्चयेन तत् ।
सद्दर्शनं मतं तज्ज्ञैः कर्मैंधनहुताशनं ॥ ८ ॥

अर्थः—आत्मिक शुद्धचिद्रूपमें जो रुचि करना है वह निश्चय सम्यग्दर्शन है और यह कर्मरूपी ईंधनके लिये जाज्वल्यमान अग्नि है । ऐसा उसके ज्ञाता ज्ञानीयोंका मत है ॥ ८ ॥

यदि शुद्धं चिद्रूपं निजं समस्तं त्रिकालगं युगपत् ।
जानन् पश्यन् पश्यति तदा स जीवः सुदृक् तत्त्वात् ॥ ९ ॥

अर्थः—जो जीव तीन कालमें रहनेवाले आत्मिक शुद्ध समस्त चिद्रूपको एक साथ जानता देखता है, वास्तविक दृष्टिसे वही सम्यग्दृष्टि है ।

भावार्थः—ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षा समस्त पदार्थ परिवर्तनशील

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। प्रतिक्षण सबकी पर्यायें बदलती रहती हैं। आत्माका भी ज्ञान दर्शन आदि चेतनाओंका प्रति समय परिवर्तन हुआ करता है, इसलिये जो जीव त्रिकालवर्ती अपने समस्त शुद्धचिद्रूपको एक साथ जानता देखता है, वास्तवमें वही सम्यग्दृष्टि है ॥९॥

ज्ञात्वाष्टांगानि तस्यापि भाषितानि जिनागमे ।
तैरमा धार्यते तद्धि मुक्तिसौख्याभिलाषिणा ॥ १० ॥

अर्थः—जो महानुभाव मोक्ष सुखके अभिलाषी हैं। मोक्षकी प्राप्तिसे ही अपना कल्याण समझते हैं वे जैनशास्त्रमें वर्णन किये गये सम्यग्दर्शनको उसके आठ अंगोंके साथ धारण करते हैं।

भावार्थः—तत्त्वोंका स्वरूप यही है और ऐसा ही है, भगवान जिनेन्द्रने जो कुछ उनके विषयमें कहा है उससे अन्यथा नहीं हो सकता। इस प्रकार जैन शास्त्र और जिन भगवानमें जो गाढ़ रुचि रखना है, वह निःशंकितांग है। देव और मनुष्यके भवके सुखको पापका कारण जान उसके लिये लालसा प्रकट न करना निःकांक्षितअंग है। महा अपवित्र इस शरीरसे निकलते हुये रुधिर आदिको देखकर ग्लानि न करना, दूसरोंको रुग्ण देख उनसे मुख न मोड़ना निर्विचिकित्सा अंग है। मिथ्यामार्ग व उनके भक्तोंसे किसी प्रकारका धार्मिक सम्बन्ध न रखना, उनके मिथ्यात्वकी अपने मुखसे प्रशंसा न करना अमूढ़दृष्टि अंग है। यदि कोई अज्ञानी पवित्र जैनमार्गकी निन्दा करे तो उसके दूर करनेका उपाय करना उपगूहन अंग है। सम्यग्दर्शन आदिसे विचलित मनुष्यको पुनः सम्यग्दर्शन आदिमें दृढ़ कर देना स्थितिकरण अंग है। सहधर्मी भाइयोंमें गौ–बछड़ेके समान प्रीति रखना वात्सल्य अंग है। जैनमार्गके अतिशय प्रकट करनेके लिये विद्यालय खोलना आदि उपाय

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

करना प्रभावना अंग है । जो महानुभाव इन आठों अंगोंके साथ साथ सम्यग्दर्शन धारण करता है, उसे मोक्षकी अवश्य प्राप्ति होती है ॥ १० ॥

अष्टधाचारसंयुक्तं ज्ञानमुक्तं जिनेशिना ।
व्यवहारनयात् सर्वतत्त्वोद्भासो भवेद् यतः ॥ ११ ॥

स्वस्वरूपपरिज्ञानं तज्ज्ञानं निश्चयाद् वरं ।
कर्मरेणूच्चये वातं हेतुं विद्धि शिवश्रियः ॥ १२ ॥

अर्थः—भगवान जिनेन्द्रने व्यवहारनयसे आठ प्रकारके आचारोंसे युक्त ज्ञान बतलाया है और उससे समस्त पदार्थोंका भलीप्रकार प्रतिभास होता है; परन्तु जिससे स्वस्वरूपका ज्ञान हो, (जो शुद्धचिद्रूपको जाने) वह निश्चय सम्यग्ज्ञान हैं। यह निश्चय सम्यग्ज्ञान समस्त कर्मोंका नाशक है और मोक्षरूपी लक्ष्मीकी प्राप्तिमें परम कारण है, इससे मोक्ष सुख अवश्य प्राप्त होता है ॥ ११–१२ ॥

यदि चिद्रूपेऽनुभवो मोहाभावे निजे भवेत्तत्त्वात् ।
तत्परमज्ञानं स्याद् बहिरंतरसंगमुक्तस्य ॥ १३ ॥

अर्थः—मोहके सर्वथा नाश हो जाने पर बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे रहित पुरुषका जो आत्मिक शुद्धचिद्रूपका अनुभव करता है, वही वास्तविकरूपसे परम ज्ञान है ॥ १३ ॥

निर्वृत्तिर्यत्र सावद्यात् प्रवृत्तिः शुभकर्मसु ।
त्रयोदशप्रकारं तच्चारित्रं व्यवहारतः ॥ १४ ॥

अर्थः—जहाँ पर सावद्य हिंसाके कारणरूप पदार्थोंसे निवृत्ति और शुभकार्यमें प्रवृत्ति हो उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं और वह तेरह प्रकारका है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—अशुभकार्यसे निवृत्ति और शुभकार्यमें प्रवृत्ति करना व्यवहारचारित्र है और वह अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रह ये पांच प्रकारके व्रत, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग वे पांच समितियाँ एवं वाग्गुप्ति, कायगुप्ति और मनोगुप्ति ये तीन प्रकारकी गुप्तियाँ इस तरह तेरह प्रकारका है ।। १४ ।।

मूलोत्तरगुणानां यत्पालनं मुक्तये मुनेः ।
दृशा ज्ञानेन संयुक्तं तच्चारित्रं न चापरं ।। १५ ।।

अर्थः—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथ जो मूल और उत्तर गुणोंका पालन करना है वह चारित्र है अन्य नहीं तथा यही चारित्र मोक्षका कारण है ।। १५ ।।

संगं मुक्त्वा जिनाकारं धृत्वा साम्यं दृशं धियं ।
यः स्मरेत् शुद्धचिद्रूपं वृत्तं तस्य किलोत्तमं ।। १६ ।।

अर्थः—(बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके) परिग्रहोंका सर्वथा त्यागकर, जिनमुद्रा (नग्नमुद्रा) समता, सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका धारक होकर जो शुद्धचिद्रूपका स्मरण करता है, उसीको उत्तम चारित्र होता है ।। १६ ।।

ज्ञप्त्या दृष्टया युतं सम्यक्चारित्रं तन्निरुच्यते ।
सतां सेव्यं जगत्पूज्यं स्वर्गादि सुख साधनं ।। १७ ।।

अर्थः—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथ ही सम्यक्-चारित्र सज्जनोंको आचरणीय है और वह ही समस्त संसारमें पूज्य तथा स्वर्ग आदि सुखोंको प्राप्त कराने वाला है ।

भावार्थः—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों ऐसे कारण हैं कि इनमें एक भी कम हो जाने पर मोक्ष सुख नहीं मिल सकता । यदि चाहे कि बिना सम्यग्दर्शन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सम्यग्ज्ञानके केवल सम्यक्‌चारित्रसे ही मोक्ष सुख मिल जाय तो यह कभी नहीं हो सकता; किंतु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके साथ रहनेवाले सम्यक्‌चारित्रसे ही मोक्ष सुख मिल सकता है, इसलिये ऐसा चारित्र ही सज्जनोंका परम आदरणीय और जगत्पूज्य है ॥ १७ ॥

शुद्धे स्वे चित्स्वरूपे या स्थितिरत्यंतनिश्चला ।
तच्चारित्रं परं विद्धि निश्चयात् कर्मनाशकृत् ॥ १८ ॥

अर्थः— आत्मिक शुद्धस्वरूपमें जो निश्चलरूपसे स्थिति है, उसे निश्चयनयसे श्रेष्ठ चारित्र व कर्म नाश करना, तूं जान ॥ १८ ॥

यदि चिद्रूपे शुद्धे स्थितिर्निजे भवति दृष्टिबोधबलात् ।
परद्रव्या स्मरणं शुद्धनयादंगिनो वृत्तं ॥ १९ ॥

अर्थः—यदि इस जीवकी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके बलसे शुद्धचिद्रूपमें निश्चलरूपसे स्थिति होती है, तब परद्रव्योंका विस्मरण वह शुद्धनिश्चयनयसे चारित्र समझना चाहिये ।

भावार्थः—जब तक शुद्धचिद्रूपमें निश्चलरूपसे स्थिति नहीं होती और पर पदार्थोंसे प्रेम नहीं हटता तब तक कदापि निश्चय चारित्रकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये निश्चय चारित्रकी प्राप्तिके अभिलाषी विद्वानोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपमें निश्चलरूपसे स्थिति करें और पर पदार्थोंसे प्रेम हटावें ॥ १९ ॥

रत्नत्रयं किल ज्ञेयं व्यवहारं तु साधनं ।
सद्भिश्च निश्चयं साध्यं मुनीनां सद्विभूषणं ॥ २० ॥

अर्थः—निश्चय रत्नत्रयकी प्राप्तिमें व्यवहाररत्नत्रय साधन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(कारण) है और निश्चयरत्नत्रय साध्य है तथा यह निश्चय रत्नत्रय मुनियोंका उत्तम भूषण है ।। २० ।।

रत्नत्रयं परं ज्ञेयं व्यवहारं च निश्चयं ।
निदानं शुद्धचिद्रूपस्वरूपात्मोपलब्धये ॥ २१ ॥

अर्थः—यह व्यवहार और निश्चय दोनों प्रकारका रत्नत्रय शुद्धचिद्रूपके स्वरूपको प्राप्तिमें असाधारण कारण है ।। २१ ।।

स्वशुद्धचिद्रूपपरोपलब्धिः कस्यापि रत्नत्रयमंतरेण ।
क्वचित्कदाचिन्न च निश्चयो दृढोऽस्ति चित्ते मम सर्वदेव ॥२२॥

अर्थः—इस शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति बिना रत्नत्रयके आज तक कभी और किसी देशमें नहीं हुई । सबको रत्नत्रयकी प्राप्तिके अनंतर ही शुद्धचिद्रूपका लाभ हुआ है यह मेरी आत्मामें दृढ़ रूपसे निश्चय है ।। २२ ।।

इति मुमुक्षु भट्टारक ज्ञानभूषण विरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्त्यै रत्नत्रय प्रतिपादको द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा निर्मित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें असाधारण कारण रत्नत्रय है इस बातको बतलानेवाला बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १२ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

तेरहवां अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये विशुद्धिकी आवश्यकताका प्रतिपादन

विशुद्धं वसनं श्लाघ्यं रत्नं रूप्यं च कांचनं ।
भाजनं भवनं सर्वैर्यथा चिद्रूपकं तथा ॥ १ ॥

अर्थः—जिस प्रकार निर्मल वस्त्र, रत्न, चांदी, सोना पात्र और भवन आदि पदार्थ उत्तम और प्रशंस्य गिने जाते हैं, उसीप्रकार यह शुद्धचिद्रूप भी अति उत्तम और प्रशंस्य है ॥ १ ॥

रागादिलक्षणः पुंसि संक्लेशोऽशुद्धता मता ।
तन्नाशो येन चांशेन तेनांशेन विशुद्धता ॥ २ ॥

अर्थः—पुरुषमें रागद्वेष आदि लक्षणका धारण संक्लेश, अशुद्धपना कहा जाता है और जितने अंशमें रागद्वेष आदिका नाश हो जाता है उतने अंशमें विशुद्धपना कहा जाता है ।

भावार्थः—यदि शुद्धनिश्चयनयसे देखा जाय तो यह आत्मा सर्वथा विशुद्ध है; परन्तु रागद्वेष आदिके सम्बन्धसे अशुद्ध हो जाता है; किन्तु जितने अंशमें रागद्वेष आदि नष्ट होते जाते हैं उतने अंशमें यह शुद्ध होता चला जाता है ॥ २ ॥

येनोपायेन संक्लेशश्चिद्रूपाद्याति वेगतः ।
विशुद्धिरेति चिद्रूपे स विधेयो मुमुक्षुणा ॥ ३ ॥

अर्थः—जो जीव मोक्षाभिलाषी हैं–अपनी आत्माको समस्त कर्मोंसे रहित करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि जिस उपायसे यह संक्लेश दूर हो विशुद्धपना आवे वह उपाय अवश्य करें ॥ ३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्पूज्यानां स्तुतिनतियजनं षट्कर्मावश्यकानां
वृत्तादीनां दृढतरधरणं सत्तपस्तीर्थ यात्रा ।
संगादीनां त्यजनमजननं क्रोधमानादिकाना-
माप्तैरुक्तं वरतरकृपया सर्वमेतद्धि शुद्ध्यै ॥ ४ ॥

अर्थः—जो पुरुष उत्तम और पूज्य हैं उनकी स्तुति, नमस्कार और पूजन करना, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि छ प्रकारे आवश्यकोंका आचरण करना, सम्यक्चारित्रको दृढ़रूपसे धारण करना, उत्तम तप और तीर्थ यात्रा करना, बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग करना तथा क्रोध, मान, माया आदि कषायोंको उत्पन्न न होने देना आदि विशुद्धिके कारण हैं, बिना इन बातोंके आचरण किये विशुद्धि नहीं हो सकती ।

भावार्थः—उत्तम मुनि आदि महापुरुषोंकी विनय आदि करनेसे, सामायिक आदि आवश्यकोंके आचरणसे, सम्यक्चारित्रके पालनसे, उत्तम तप, तीर्थयात्राके करनेसे, परिग्रहोंके त्यागसे और क्रोध आदि कषायोंके न उत्पन्न होने देनेसे कर्मोका नाश होता है और कर्मोके नाशसे आत्मामें विशुद्धपना आता है, इसलिये जो मनुष्य अपने आत्माकी विशुद्धताके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे उपर्युक्त बातों पर अवश्य ध्यान दें और अपनी आत्माको शुद्ध बनावें ॥ ४ ॥

रागादिविक्रियां दृष्ट्वांगिनां क्षोभादि मा व्रज ।
भवे तदितरं किं स्यात् स्वच्छं शिवपदं स्मर ॥ ५ ॥

अर्थः—हे आत्मन् ! मनुष्योंमें रागद्वेष आदिका विकार देख तुझे किसी प्रकार क्षोभ नहीं करना चाहिये; क्योंकि संसारमें सिवाय राग आदिके विकारके और होना ही क्या है ! इसलिये तू अतिशय विशुद्ध मोक्षमार्गका ही स्मरण कर ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—प्रायः संसारमें यह बात प्रत्यक्ष गोचर होती है कि कहीं रागके सम्बन्धसे नानाप्रकारके विकार देखनेमें आते हैं और कहीं द्वेष और मोहके सम्बन्धसे; परन्तु रागद्वेष आदिका विकार देख किसी प्रकार क्षोभ न करना चाहिये; क्योंकि इसका नाम संसार है और इसमें रागद्वेष विकारोंके सिवाय उत्तम बात होनी कठिन है, इसलिये हे आत्मन् ! यदि तू रागद्वेष आदिके विकारोंसे रहित होना चाहता है, तो तू मोक्षमार्गका स्मरण कर उसीसे तेरा कल्याण होगा ।। ५ ।।

विपर्यस्तो मोहादहमिह विवेकेन रहितः
सरोगो निःस्वो वा विमतिरगुणः शक्तिविकलः ।।
सदा दोषी निंद्योऽगुरुविधिरकर्मा हि वचनं
वदन्नंगी सोऽयं भवति भुवि वैशुद्ध्यसुखभाग् ।। ६ ।।

अर्थः—मैं मोहके कारण विपर्यस्त होकर ही अपनेको विवेकहीन, रोगी, निर्धन, मतिहीन, अगुणी, शक्तिरहित, दोषी, निन्दनीय, हीन क्रियाका करनेवाला, अकर्मण्य—आलसी मानता हूँ । इसप्रकार वचन बोलनेवाला (—ऐसी भावना करनेवाला) विशुद्धताके सुखका अनुभव करता है ।

भावार्थः—मैं वास्तविक दृष्टिसे शुद्ध—बुद्ध—चैतन्यस्वरूप हूँ । सब पदार्थोंका ज्ञाता-दृष्टा और सदा आनन्दस्वरूप हूँ; किन्तु अज्ञानवश मोहके जालमें फँसकर मैं विपरीत सा हो गया हूँ । विवेकहीनता, सरोगता, निर्धनता, पागलपन, शक्ति रहितपना आदि कर्मके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए हैं । जो मनुष्य ऐसा विचार किया करता है, वह अवश्य विशुद्धताजन्य सुखका अनुभव करता है ।। ६ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज्ञो ज्ञातेश्च दस्योर्ज्वलनजलरीपोरीतितो मृत्युरोगात्
दोषोद्भूतेरकीर्त्तेः सततमतिभयं रैनृगोमन्दिरस्य ।
चिंता तन्नाशशोको भवति च गृहिणां तेन तेषां विशुद्धं
चिद्रूपध्यानरत्नं श्रुतिजलधिभवं प्रायशो दुर्लभंस्यात् ॥ ७ ॥

अर्थः—संसारी जीवोंको राजा, जाति, चोर, अग्नि, जल, वैरी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि, ईति, मृत्यु, रोग, दोष और अकीर्तिसे सदा भय बना रहता है। धन, कुटुम्बी, मनुष्य, पशु और मकानकी चितायें लगी रहती हैं एवं उनके नाशसे शोक होता रहता है, इसलिये उन्हें शास्त्ररूपी अगाध समुद्रसे उत्पन्न, शुद्धचिद्रूपके ध्यानकी प्राप्ति होना नितांत दुर्लभ है।

भावार्थः—भयभीत मनुष्य अगाध समुद्रसे जिस प्रकार सहसा रत्न प्राप्त नहीं कर सकता, उसीप्रकार जो मनुष्य राजा, जाति, चोर, अग्नि, जल आदिसे भय करनेवाला है, धन, धान्य, पशु, मकान आदिकी चिन्ता और उसके नाशसे शोकाकुल रहता है, वह प्रायः शुद्धचिद्रूपका ध्यान नहीं कर सकता ॥ ७ ॥

पठने गमने संगे चेतनेऽचेतनेऽपि च ।
किंचित्कार्यकृतौ पुंसा चिंता हेया विशुद्धये ॥ ८ ॥

अर्थः—जो महानुभाव विशुद्धताका आकांक्षी है, अपनी आत्माको निष्कलंक बनाना चाहता है, उसे चाहिये कि वह पढ़ने, गमन करने, चेतन-अचेतन दोनों प्रकारके परिग्रह धारने और किसी अन्य कार्यके करनेमें किसी प्रकारकी चिन्ता न करे अर्थात् अन्य पदार्थोंकी चिन्ता करनेसे आत्मा विशुद्ध नहीं बन सकती ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धचिद्रूपकस्यांशो द्वादशांगश्रुतार्णवः ।
शुद्धचिद्रूपके लब्धे तेन किं मे प्रयोजनं ॥ ९ ॥

अर्थः—आचारांग, सूत्रकृतांग आदि द्वादशांगरूपी समुद्र शुद्धचिद्रूपका अंश है, इसलिये यदि शुद्धचिद्रूप प्राप्त हो गया है, तो मुझे द्वादशांगसे क्या प्रयोजन? वह तो प्राप्त हो ही गया ।

भावार्थः—द्वादशांगकी प्राप्ति संसारमें अतिशय दुर्लभ है; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति होते ही उसकी प्राप्ति आपसे आप हो जाती है; क्योंकि वह शुद्धचिद्रूपका अंश है, इसलिये कल्याणके आकांक्षी जीवोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपकी ही प्राप्ति करें । द्वादशांग आदि पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये शुद्धचिद्रूपके लाभका ही प्रयत्न करें ॥ ९ ॥

शुद्धचिद्रूपके लब्धे कर्त्तव्यं किंचिदस्ति न ।
अन्यकार्यकृतौ चिंता वृथा मे मोहसंभवा ॥ १० ॥

अर्थः—मुझे संसारमें शुद्धचिद्रूपका लाभ हो गया है, इसलिये कोई मुझे करनेके लिये अवशिष्ट न रहा, सब कर चुका तथा शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हो जाने पर अन्य कार्योंके लिये मुझे चिन्ता करना भी व्यर्थ है; क्योंकि यह मोहसे होती है—अर्थात् मोहसे उत्पन्न हुई चिन्तासे मेरा कदापि कल्याण नहीं हो सकता ॥ १० ॥

वपुषां कर्मणां कर्महेतुनां चिंतनं यदा ।
तदा क्लेशो विशुद्धिः स्याच्छुद्धचिद्रूपचिंतनं ॥ ११ ॥

अर्थः—शरीर, कर्म और कर्मके कारणोंका चितवन करना क्लेश है अर्थात् उनके चितवनसे आत्मामें क्लेश उत्पन्न होता है और शुद्धचिद्रूपके चिन्तवनसे विशुद्धि होती है ॥११॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृही यतिर्न यो वेत्ति शुद्धचिद्रूप लक्षणं ।
तस्य पंचनमस्कारप्रमुखस्मरणं वरं ॥ १२ ॥

अर्थः—जो गृहस्थ या मुनि शुद्धचिद्रूपका स्वरूप नहीं जानता, उसके लिये पंचपरमेष्ठीके मंत्रोंका स्मरण करना ही कार्यकारी है उसीसे उसका कल्याण हो सकता है ।। १२ ।।

संक्लेशस्य विशुद्धेश्च फलं ज्ञात्वा परीक्षणं ।
तं त्यजेत्तां भजत्यंगी योऽत्रामुत्र सुखी स हि ॥ १३ ॥

अर्थः—जो पुरुष संक्लेश और विशुद्धिके फलको परीक्षा पूर्वक जानकर संक्लेशको छोड़ता है और विशुद्धिका सेवन करता है उस मनुष्यको इस लोक, परलोक दोनों लोकोंमें सुख मिलता है ।। १३ ।।

संक्लेशे कर्मणां बन्धोऽशुभानां दुःखदायिनां ।
विशुद्धौ मोचनं तेषां बन्धो वा शुभकर्मणां ।। १४ ।।

अर्थः—क्योंकि संक्लेशके होनेसे अत्यन्त दुःखदायी अशुभ कर्मोंका आत्माके साथ सम्बन्ध होता है और विशुद्धताकी प्राप्तिसे इन अशुभ कर्मोंका सम्बन्ध छूटता है तथा शुभ कर्मोंका सम्बन्ध होता है ।

भावार्थः—जब तक यह आत्मा विशुद्ध नहीं संक्लेशमय रहता है, तब तक इसके साथ नाना प्रकारके अशुभ कर्मोंका बन्ध होता रहता है और उससे इसे अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं; परन्तु जिस समय यह आत्मा विशुद्धताका अनुभव करने लग जाता है उस समय इससे अशुभ कर्मोंका सम्बन्ध छूट जाता है और सुखदायक शुभकर्मोंका सम्बन्ध होने लगता है, इसलिए दुःखदायक संक्लेशको छोड़कर सुखदायक चिद्रूपकी शुद्धिका ही आश्रय करना योग्य है ।। १४ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशुद्धेः शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानं मुख्यकारणं ।
संक्लेशस्तद्विघाताय जिनेनेदं निरूपितं ॥ १५ ॥

अर्थः—यह विशुद्धि शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें मुख्य कारण है—इसीसे शुद्धचिद्रूपके ध्यानको प्राप्ति होती है और संक्लेश शुद्धचिद्रूपके ध्यानका विघातक है, जब तक आत्मामें किसी प्रकारका संक्लेश रहता है तब तक शुद्धचिद्रूपका ध्यान कदापि नहीं हो सकता ॥ १५ ॥

अमृतं च विशुद्धिः स्यान्नान्यल्लोकप्रभाषितं ।
अत्यंतसेवने कष्टमन्यस्यास्य परं सुखं ॥ १६ ॥

अर्थः—संसारमें लोग अमृत जिसको कहकर पुकारते हैं—अथवा जिस किसी पदार्थको लोग अमृत बतलाते हैं, वह पदार्थ वास्तवमें अमृत नहीं है। वास्तविक अमृत तो विशुद्धि ही है; क्योंकि लोककथित अमृतके अधिक सेवन करनेसे तो कष्ट भोगना पड़ता है और विशुद्धिरूपी अमृतके अधिक सेवन करनेसे परम सुख ही मिलता है, किसी प्रकारका भी कष्ट नहीं भोगना पड़ता, इसलिये जिससे सब अवस्थाओंमें सुख मिले वही अमृत सच्चा है ॥ १६ ॥

विशुद्धिसेवनासक्ता वसंति गिरिगह्वरे ।
विमुच्यानुपमं राज्यं खसुखानि धनानि च ॥ १७ ॥

अर्थः—जो मनुष्य विशुद्धताके भक्त हैं, अपनी आत्माको विशुद्ध बनाना चाहते हैं, वे उसकी सिद्धिके लिये पर्वतकी गुफाओंमें निवास करते हैं तथा अनुपम राज्य, इन्द्रियसुख और संपत्तिका सर्वथा त्याग कर देते हैं—राज्य आदिकी ओर जरा भी चित्तको भटकने नहीं देते ॥ १७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशुद्धेश्चित्स्वरूपे स्यात् स्थितिस्तस्या विशुद्धता ।
तयोरन्योन्यहेतुत्वमनुभूय प्रतीयतां ॥ १८ ॥

अर्थः—विशुद्धि होनेसे शुद्धचिद्रूपमें स्थिति होती है और विशुद्धचिद्रूपमें निश्चलरूपसे स्थिति करनेसे विशुद्धि होती है, इसलिये इन दोनोंको आपसमें एक दूसरेका कारण जानकर इनका वास्तविक स्वरूप जान लेना चाहिये ।

भावार्थः—जब तक विशुद्धता नहीं होती तब तक शुद्ध चिद्रूपमें स्थिति नहीं हो सकती; और जब तक शुद्धचिद्रूपमें स्थिति नहीं होती तब तक विशुद्धता नहीं आ सकती, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि इनमें एक दूसरेको आपसमें कारण जानकर इन दोनोंके स्वरूपको जाननेके लिये पूर्ण उद्यम करे ॥ १८ ॥

विशुद्धिः परमो धर्मः पुंसि सैव सुखाकरः ।
परमाचरणं सैव मुक्तेः पंथाश्च सैव हि ॥ १९ ॥
तस्मात् सैव विधातव्या प्रयत्नेन मनीषिणा ।
प्रतिक्षणं मुनीशेन शुद्धचिद्रूपचिंतनात् ॥ २० ॥

अर्थः—यह विशुद्धि ही संसारमें परम धर्म है, यही जीवोंका सुखका देनेवाला, उत्तम चारित्र और मोक्षका मार्ग है इसलिये जो मुनिगण विद्वान हैं—जड़ और चेतनके स्वरूपके वास्तविक जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपके चिंतवनसे प्रयत्नपूर्वक विशुद्धिकी प्राप्ति करें ।

भावार्थः—बिना शुद्धचिद्रूपके चिन्तवनके विशुद्धिकी प्राप्ति होना असंभव है, इसलिये विद्वान मुनिगणोंकी इसकी प्राप्तिके लिये शुद्धचिद्रूपका चिन्तवन करना चाहिये; क्योंकि यह विशुद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही संसारमें परम धर्म, सुखकी देनेवाली, उत्तम चारित्र और मोक्षका मार्ग है ।। १९–२० ।।

यावद्बाह्यांतरान् संगान् न मुंचंति मुनीश्वराः ।
तावदायाति नो तेषां चित्स्वरूपे विशुद्धता ॥ २१ ॥

अर्थः—जब तक मुनिगण बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका नाश नहीं कर देते, तब तक उनके चिद्रूपमें विशुद्धपना नहीं आ सकता ।

भावार्थः—स्त्री पुत्र आदिको अपनाना बाह्य परिग्रह है और रागद्वेष आदिको अपनाना अभ्यंतर परिग्रह है । जब तक इन दोनों प्रकारके परिग्रहोंमें ममता लगी रहती है, तब तक चिद्रूप विशुद्ध नहीं हो सकता; परन्तु ज्यों-ज्यों बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे ममता छूटती जाती है त्यों-त्यों चिद्रूप भी विशुद्ध होता चला जाता है, इसलिये जो मुनिगण विशुद्धचिद्रूपके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे सर्वथा ममता छोड़ दें ।। २१ ।।

विशुद्धिनावमेवात्र श्रयंतु भवसागरे ।
मज्जंतो निखिला भव्या बहुना भाषितेन किं ॥ २२ ॥

अर्थः—ग्रन्थकार कहते हैं कि—इस विषयमें विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन ? प्रिय भव्यो ! अनादि कालसे आप लोग इस संसाररूपी सागरमें गोता खा रहे हैं, अब आप इस विशुद्धिरूपी नौकाका आश्रय लेकर संसारसे पार होनेके लिये पूर्ण उद्यम कीजिये ।। २२ ।।

आदेशोऽयं सद्गुरूणां रहस्यं सिद्धांतानामेतदेवाखिलानां ।
कर्तव्यानां मुख्यकर्तव्यमेतत्कार्या यत्स्वे चित्स्वरूपे विशुद्धिः ॥२३॥

अर्थः—अपने चित्स्वरूपमें विशुद्धि प्राप्त करना यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तम गुरुओंका उपदेश है, समस्त सिद्धांतोंका रहस्य और समस्त कर्तव्योंमें मुख्य कर्तव्य है ।

भावार्थः—चिद्रूपको बिना विशुद्ध किये किसी प्रकारका कल्याण नहीं हो सकता, इसलिये यही उत्तम गुरुओंका उपदेश समस्त सिद्धान्तोंका रहस्य और कर्तव्योंमें मुख्य कर्तव्य है कि चिद्रूपमें विशुद्धि प्राप्त करो ।। २३ ।।

इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषण विरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूप लब्ध्यै विशुद्ध्यानयनविधि प्रतिपादक-स्त्रयोदशोऽध्यायः ।। २३ ।।

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा विरचित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये विशुद्धिकी प्राप्तिका उपाय प्रतिपादन करनेवाला तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।। १३ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौदहवाँ अध्याय

अन्य कार्योंके करने पर भी शुद्धचिद्रूपके स्मरणका उपदेश

नीहाराहारपानं खमदनविजयं स्वापमौनासनं च
यानं शीलं तपांसि व्रतमपि कलयन्नागमं संयमं च ।
दानं गानं जिनानां नुतिनतिजपनं मन्दिरं चाभिषेकं
यात्रार्चे मूर्तिमेवं कलयति सुमतिः शुद्धचिद्रूपकोऽहं ॥ १ ॥

अर्थः—बुद्धिमान पुरुष नीहार (मलमूत्र त्याग करना) खाना, पीना इन्द्रिय और कामका, विजय, सोना, मौन, आसन, गमन, शील, तप, व्रत, आगम, संयम, दान, गान, जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति, प्रणाम, जप, मन्दिर, अभिषेक, तीर्थयात्रा, पूजन और प्रतिमाओंके निर्माण आदि करते 'मैं शुद्धचिद्रूप स्वरूप हूँ' ऐसा भाते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार बुद्धिमान पुरुषोंको मल–मूत्र त्याग, खाना, पीना, इन्द्रिय और कामका विजय, मौन, आसन, गमन, शील, तप, व्रत आदि कार्य करने पड़ते हैं, बिना इन्हें किये उनका काम चल नहीं सकता, उसी प्रकार "मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" इस प्रकारके विना ध्यानके भी उनका कार्य नहीं चल सकता, इसलिये वे शुद्धचिद्रूपका स्मरण करते अन्य कार्य करते हैं ॥ १ ॥

कुर्वन् यात्रार्चनाद्यं खजयजपतपोऽध्यापनं साधुसेवां
दानौघान्योपकारं यमनियमधरं स्वापशीलं दधानः ।
उद्भीभावं च मौनं व्रतसमितितर्ति पालयन् संयमौघं
चिद्रूपध्यानरक्तो भवति च शिवभाग् नापरः स्वर्गभाक् च ॥२॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—जो मनुष्य तीर्थयात्रा, भगवानकी पूजन, इन्द्रियोंका जय, जप, तप, अध्यापन (पढ़ाना), साधुओंकी सेवा, दान, अन्यका उपकार, यम, नियम, शील, भयका अभाव, मौन, व्रत और समितिका पालन एवं संयमका आचरण करता हुआ शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें रत है, उसे तो मोक्षकी प्राप्ति होती है और उससे अन्य अर्थात् जो शुद्धचिद्रूपका ध्यान न कर तीर्थयात्रा आदिका ही करनेवाला है, उसे नियमसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ।

भावार्थः—तीर्थयात्रा, भगवानकी पूजन, इन्द्रियोंका जय, जप, तप, अध्यापन, साधुओंकी सेवा आदि कार्य सर्वदा शुभ है । यदि इनके साथ शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें अनुराग किया जाय तो मोक्षकी प्राप्ति होती है और शुद्धचिद्रूपका ध्यान न कर केवल तीर्थयात्रा आदिका ही आचरण किया जाय तब स्वर्ग सुख मिलता है, इसलिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि वे मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिये तीर्थ यात्रा आदिके साथ शुद्धचिद्रूपका ध्यान अवश्य करें । यदि वे शुद्धचिद्रूपका ध्यान न भी कर सके तो तीर्थयात्रा भगवानकी पूजन आदि कार्य तो अवश्य करने चाहिये; क्योंकि इनके आचरण करनेसे भी स्वर्गसुखकी प्राप्ति होती है ।। २ ।।

चित्तं निधाय चिद्रूपे कुर्याद् वागंगचेष्टितं ।
सुधीर्निरंतरं कुंभे यथा पानीयहारिणी ॥ ३ ॥

अर्थः—जो मनुष्य विद्वान हैं–संसारके संतापसे रहित होना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे घड़ेमें पनिहारीके **समान** शुद्धचिद्रूपमें अपना चित्त स्थिर कर वचन और शरीरकी चेष्टा करें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—जिस प्रकार पनिहारी जलसे भरे हुये घड़ेमें अपना चित्त स्थिर कर वचन और शरीरकी चेष्टा करती है उसीप्रकार जो मनुष्य संसारके संतापसे खिन्न हैं और उससे रहित होना चाहते हैं उन्हें भी चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपमें अपना मन स्थिर कर उसकी प्राप्तिके लिये वचन और शरीरका व्यापार करें; क्योंकि शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिसे समस्त संतापका नाश होता है और शांतिमय सुख मिलता है ॥ ३ ॥

वैराग्यं त्रिविधं प्राप्य संगं हित्वा द्विधा ततः ।
तत्त्वविद्गुरुमाश्रित्य ततः स्वीकृत्य संयमं ॥ ४ ॥

अधीत्य सर्वशास्त्राणि निर्जने निरुपद्रवे ।
स्थाने स्थित्वा विमुच्यान्यचिन्तां धृत्वा शुभासनं ॥ ५ ॥

पदस्थादिकमभ्यस्य कृत्वा साम्यावलम्बनं ।
मानसं निश्चलीकृत्य स्वं चिद्रूपं स्मरंति ये ॥ ६ ॥ त्रिकलं ।

पापानि प्रलयं यांति तेषामभ्युदयप्रदः ।
धर्मो विवर्द्धते मुक्तिप्रदो धर्मश्च जायते ॥ ७ ॥

अर्थः—जो महानुभाव मनसे, वचनसे और कायसे वैराग्यको प्राप्त होकर, बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंको छोड़कर, तत्त्ववेत्ता गुरुका आश्रय और संयमको स्वीकार कर, समस्त शास्त्रोंके अध्ययनपूर्वक निर्जन निरुपद्रव स्थानमें रहते हैं और वहाँ समस्त प्रकारकी चिन्ताओंका त्याग, शुभ आसनका धारण, पदस्थ, पिंडस्थ, आदि ध्यानोंका अवलंबन, समताका आश्रय और मनका निश्चलपना धारण कर शुद्धचिद्रूपका स्मरण ध्यान करते हैं उनके समस्त पाप जड़से नष्ट हो जाते हैं, नाना प्रकारके कल्याणोंके करनेवाले धर्मकी वृद्धि होती है और उससे उन्हें मोक्ष मिलता है ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भावार्थः—चिद्रूपका स्मरण करना संसारमें अतिशय कठिन है; क्योंकि जो मनुष्य मन, वचन और कायसे वैरागी, स्त्री पुत्र आदिमें ममत्व न रखनेवाला, बाह्य–अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्यागी, तत्त्वोंके जानकार गुरुओंका उपासक, परम संयमी, समस्त शास्त्रोंका वेत्ता, निर्जन और निरुपद्रव वनोंमें निवास करनेवाला, सब प्रकारकी चिन्ताओंसे रहित, शुभ आसन, पदस्थ आदि ध्यान और समताका अवलंबी होगा एवं जिसका मन बाह्य पदार्थोंमें चंचल न होकर निश्चल होगा वही शुद्धचिद्रूपका स्मरण कर सकेगा तथा ऐसे शुद्धचिद्रूपके स्मरण करनेवाले पुरुषके ही समस्त पापोंका नाश, सर्वोत्तम धर्मकी वृद्धि और मोक्षका लाभ होगा, इसलिये सुखके अभिलाषी जीवोंको चाहिये कि वे उपर्युक्त बातोंके साधन मिलाकर शुद्धचिद्रूपके स्मरणका अवश्य प्रयत्न करें ।। ४–७ ।।

वार्वाताग्न्यमृतोषवज्रगरुडज्ञानौषधेभारिणा
सूर्येण प्रियभाषितेन च यथा यांति क्षणेन क्षयं ।
अग्न्यब्दागविषं मलागफणिनोऽज्ञानं गदेभव्रजाः
रात्रिर्वैरमिहावनावघचयश्चिद्रूपसंचिंतया ।। ८ ।।

अर्थः—जिस प्रकार जल अग्निका क्षय करता है, पवन मेघका, अग्नि वृक्षका, अमृत विषका, खार मैलका, वज्र पर्वतका, गरुड़ सर्पका, ज्ञान अज्ञानका, औषध रोगका, सिंह हाथियोंका, सूर्य रात्रिका और प्रिय भाषण वैरका नाश करता है, उसी प्रकार शुद्धचिद्रूपके चिन्तवन करनेसे समस्त पापोंका नाश होता है ।

भावार्थः—जिन जिनका आपसमें विरोध होता है उनमें बलवान विरोधी दूसरे निर्बल विरोधीका अवश्य नाश करता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । जल अग्नि, पवन मेघ, अग्नि वृक्ष, अमृत विष, खार मैल, वज्र पर्वत, गरुड़ सर्प, ज्ञान अज्ञान, औषध रोग, सिंह हाथी, सूर्य रात्रि और प्रिय भाषण वैरका आपसमें विरोध है । बलवान जल आदि अग्निको नष्ट कर देते हैं, उसीप्रकार शुद्धचिद्रूप और पापोंका आपसमें विरोध है, इसलिये शुद्धचिद्रूपके सामने पाप जरा भी टिक नहीं सकते ।। ८ ।।

बर्द्धते च यथा मेघात्पूर्वं जाता महीरुहाः ।
तथा चिद्रूपसद्ध्यानात् धर्मश्चाभ्युदयप्रदः ।। ९ ।।

अर्थः—जिस प्रकार पहिलेसे उगे हुए वृक्ष, मेघसे जलसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं, उसीप्रकार शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे धर्म भी वृद्धिको प्राप्त होता है और नाना प्रकारके कल्याणोंको प्रदान करता है ।

भावार्थः—धर्म आत्माका स्वभाव है । सिवाय आत्माके वह कभी किसी कालमें दूसरे पदार्थोंमें रह नहीं सकता; किन्तु कर्मोंके प्रबल पर्दाके पड़ जानेसे उसका स्वरूप कुछ ढ़क जाता है–धर्माचरण करनेमें मनुष्योंके परिणाम नहीं लगते; परन्तु जिस प्रकार जमीनमें पहिलेसे ही उगे हुये वृक्ष मेघकी सहायतासे वृद्धिको प्राप्त हो जाते हैं और नाना प्रकारके फलोंको प्रदान करते हैं, उसीप्रकार शुद्धचिद्रूपके ध्यानके द्वारा कर्मोंके नष्ट हो जानेसे धर्म भी वृद्धिको प्राप्त हो जाता है और उससे जीवोंको अनेक प्रकारके कल्याणोंकी प्राप्ति होती है ।। ९ ।।

यथा बलाहकवृष्टेर्जायंते हरितांकुराः ।
तथा मुक्तिप्रदो धर्मः शुद्धचिद्रूपचिंतनात् ।। १० ।।

अर्थः—जिस प्रकार मेघसे भूमिके अन्दर हरे हरे अंकुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न होते हैं, उसीप्रकार शुद्धचिद्रूपके चिन्तवन करनेसे मुक्ति प्रदान करनेवाला धर्म भी उत्पन्न होता है—अर्थात् शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे अनुपम धर्मकी प्राप्ति होती है और उसकी सहायतासे जीव मोक्ष सुखका अनुभव करते हैं ।। १० ।।

व्रतानि शास्त्राणि तपांसि निर्जने निवासमंतर्बहिः संगमोचनं ।
मौनं क्षमातापनयोगधारणं चिच्चिंतयामा कलयन् शिवं श्रयेत् ।।११।।

अर्थः—जो विद्वान पुरुष शुद्धचिद्रूपके चिन्तवनके साथ व्रतोंका आचरण करता है, शास्त्रोंका स्वाध्याय, तपका आराधन, निर्जनवनमें निवास, बाह्य–अभ्यंतर परिग्रहका त्याग, मौन, क्षमा और आतापन योग धारण करता है, उसे ही मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ।

भावार्थः—चाहे कितना भी व्रतोंका आचरण, शास्त्रोंका स्वाध्याय, तपका आराधन, निर्जन वनमें निवास, बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग, मौन, क्षमा और आतापन योगको धारण करो, जब तक उनके साथ साथ शुद्धचिद्रूपका चिन्तवन न होगा तब तक उनसे कभी भी मोक्ष सुख प्राप्त नहीं होगा, इसलिये मोक्षाभिलाषियोंको चाहिये कि वे व्रत आदिके आचरणके साथ अवश्य शुद्धचिद्रूपका चिंतवन करें ।। ११ ।।

शुद्धचिद्रूपके रक्तः शरीरादिपराङ्मुखः ।
राज्यं कुर्वन्न बन्धेत कर्मणा भरतो यथा ।। १२ ।।

अर्थः—जो पुरुष शरीर, स्त्री, पुत्र आदिसे ममत्व छोड़कर शुद्धचिद्रूपमें अनुराग करनेवाला है, वह राज्य करता हुआ भी कर्मोंसे नहीं बँधता जैसे कि चक्रवर्ती राजा भरत ।

भावार्थः—भगवान ऋषभदेवके पुत्र चक्रवर्ती राजा भरत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छ खण्ड पृथ्वीके शासक थे, बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उनके सेवक, छयानवे हजार आज्ञाकारिणी रानियाँ और भी हाथी, घोड़ा आदि लाखों करोड़ों थे; तथापि उनका सिवाय शुद्धचिद्रूपके जरा भी किसीमें अनुराग नहीं था। वे सदा सबसे पराङ्मुख रहते थे, इसलिये जिस समय वे परिग्रहसे सर्वथा ममत्वरहित हो तपोवन गये उस समय मुनिराज होते ही उन्हें केवलज्ञान हो गया और समस्त कर्मोंका नाश कर वे मोक्षशिला पर जा विराजे, उसीप्रकार भरत चक्रवर्तीके समान जो मनुष्य शरीर आदिमें ममत्व न कर शुद्धचिद्रूपमें प्रेम करता है, वह राज्यका भोग करता हुआ भी कर्मोंसे नहीं बन्धता और मोक्ष सुखका अनुभव करता है ॥ १२ ॥

स्मरन् स्वशुद्धचिद्रूपं कुर्यात्कार्यशतान्यपि ।
तथापि न हि बध्यते धीमानशुभकर्मणा ॥ १३ ॥

अर्थः—आत्मिक शुद्धचिद्रूपको स्मरण करता हुआ बुद्धिमान पुरुष यदि सैकड़ों भी अन्य कार्य करे तथापि उसकी आत्माके साथ किसी प्रकारके अशुभ कर्मका बन्ध नहीं होता।

भावार्थः—बन्धके होनेमें ममत्व कारण है। सैकड़ों कार्य करने पर भी यदि परपदार्थोंमें किसी प्रकारकी ममता नहीं हो तो कदापि बन्ध नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

रोगेण पीडितो देही यष्टिमुष्टयादिताडितः ।
बद्धो रज्वादिभिर्दुःखी न चिद्रूपं निजं स्मरन् ॥ १४ ॥

अर्थः—जो मनुष्य स्वशुद्धचिद्रूपका स्मरण करनेवाला है चाहे वह कैसे भी रोगसे पीड़ित क्यों न हो, लाठी मुक्कोंसे, ताड़ित और रस्सी आदिसे भी क्यों न बन्धा हुआ हो उसे जरा भी क्लेश नहीं होता। अर्थात् वह यह जानकर कि—ये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारी व्याधियां शरीरमें होती हैं मेरे शुद्धचिद्रूपमें नहीं और शरीर मुझसे सर्वथा भिन्न है—रंचमात्र भी दुःखका अनुभव नहीं करता ॥ १४ ॥

बुभुक्षया च शीतेन वातेन च पिपासया ।
आतपेन भवेन्नार्तो निजचिद्रूपचिंतनात् ॥ १५ ॥

अर्थः—आत्मिक शुद्धचिद्रूपके चिन्तवनसे मनुष्यको भूख, ठंड, पवन, प्यास और आतापकी भी बाधा नहीं होती। (भूख आदिकी बाधा होने पर भी वह आनन्द ही मानता है) ॥ १५ ॥

हर्षो न जायते स्तुत्या विषादो न स्वनिंदया ।
स्वकीयं शुद्धचिद्रूपमन्यहं स्मरतोऽगिनः ॥ १६ ॥

अर्थः—जो प्रतिदिन स्वकीय शुद्धचिद्रूपका स्मरण ध्यान करता है उसे दूसरे मनुष्योंसे अपनी स्तुति सुनकर हर्ष नहीं होता और निन्दा सुनकर किसी प्रकारका विषाद नहीं होता—निन्दा स्तुति दोनों दशामें वह मध्यस्थरूपसे रहता है ॥१६॥

रागद्वेषौ न जायेते परद्रव्ये गतागते ।
शुभाशुभेऽगिनः शुद्धचिद्रूपासक्तचेतसः ॥ १७ ॥

अर्थः—जिस मनुष्यका चित्त शुद्धचिद्रूपमें आसक्त है वह स्त्री, पुत्र आदि परद्रव्यके चले जाने पर द्वेष नहीं करता और उनकी प्राप्तिमें अनुरक्त नहीं होता तथा अच्छी–बुरी बातोंके प्राप्त हो जाने पर भी उसे किसी प्रकारका रागद्वेष नहीं होता ॥ १७ ॥

न संपदि प्रमोदः स्यात् शोको नापदि धीमतां ।
अहो स्विन्सर्वदात्मीयशुद्धचिद्रूपचेतसां ॥ १८ ॥

अर्थः—सदा निज शुद्धचिद्रूपमें मन लगानेवाले बुद्धिमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपत्तिके प्राप्त हो जाने पर हर्ष और विपत्तिके आने पर विषाद नहीं होता—वे संपत्ति और विपत्तिको समान रूपसे मानते हैं ॥ १८ ॥

स्वकीयं शुद्धचिद्रूपं ये न मुंचंति सर्वदा ।
गच्छंतोऽप्यन्यलोकं ते सम्यगभ्यासतो न हि ॥ १९ ॥

तथा कुरु सदाभ्यासं शुद्धचिद्रूपचिंतने ।
संक्लेशे मरणे चापि तद्विनाशं यथैति न ॥ २० ॥

अर्थः—जो महानुभाव आत्मिक शुद्धचिद्रूपका कभी त्याग नहीं करते वे यदि अन्य भवमें भी चले जाएँ तो भी उनके शुद्धचिद्रूपका अभ्यास नहीं छूटता । पहिले भवमें जैसी उनकी शुद्धरूपमें लीनता रहती है वैसी ही बनी रहती है, इसलिये हे आत्मन् ! तू शुद्धचिद्रूपके ध्यानका इस रूपसे सदा अभ्यास कर, जिससे कि भयंकर दुःख और मरणके प्राप्त हो जाने पर भी उसका विनाश न हो—वह ज्योंका त्यों बना रहे ॥ १९–२० ॥

वदन्नन्यैर्हसन् गच्छन् पाठयन्नागमं पठन् ।
आसनं शयनं कुर्वन् शोचनं रोदनं भय ॥ २१ ॥

भोजनं क्रोधलोभादि कुर्वन् कर्मवशात् सुधीः ।
न मुंचति क्षणार्द्धं स शुद्धचिद्रूपचिंतनं ॥ २२ ॥

अर्थः—जो पुरुष बुद्धिमान हैं–यथार्थमें शुद्धचिद्रूपके स्वरूपके जानकार हैं वे कर्मोंके फंदमें फँसकर बोलते, हँसते, चलते, आगमको पढ़ाते, पढ़ते, बैठते, शोते, शोक करते, रोते, डरते, खाते, पीते और क्रोध लोभ, आदिको भी करते हुये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षणभरके लिये भी शुद्धचिद्रूपके स्वरूपसे विचलित नहीं होते–प्रतिक्षण वे शुद्धचिद्रूपका ही चिंतवन करते रहते हैं ॥ २१–२२ ॥

इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषण विरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपं स्मरन्नन्यकार्यं करोतीति प्रतिपादकश्चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा विरचित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें "शुद्धचिद्रूपका ध्यान करता हुआ भी यह जीव अन्य कार्य करता रहता है" इस बातको बतलानेवाला चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १४ ॥

卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पन्द्रहवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये पर द्रव्योंके त्यागका उपदेश

गृहं राज्यं मित्रं जनक जननीं भ्रातृ पुत्रं कलत्रं
सुवर्णं रत्नं वा पुरजनपदं वाहनं भूषणं वै ।
खसौख्यं क्रोधाद्यं वसनमशनं चित्तवाक्कायकर्म-
त्रिधा मुंचेत् प्राज्ञः शुभमपि निजं शुद्धचिद्रूपलब्ध्यै ॥ १ ॥

अर्थः—बुद्धिमान मनुष्योंको शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति करनेके लिये शुभ होने पर भी अपने घर, राज्य, मित्र, पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री, स्वर्ण, रत्न, पुर, जनपद, सवारी, भूषण, इन्द्रियजन्य सुख, क्रोध, वस्त्र और भोजन आदिको मन, वचन और कायसे सर्वथा त्याग देने चाहिये ।

भावार्थः—यद्यपि संसारमें घर, राज्य, मित्र, पिता, माता, भाई, पुत्र, स्त्री, स्वर्ण, रत्न, पुर, नगर, सवारी, इन्द्रियजन्य सुख आदिसे भी काम चलता है और शुभ भी है; परन्तु शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें बाधक हैं । जब तक इनकी ओर ध्यान रहता है तब तक कदापि शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसलिये विद्वानोंको चाहिये कि वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये घर, राज्य आदिका सर्वथा त्याग कर दें ॥ १ ॥

सुतादौ भार्यादौ वपुषि सदने पुस्तक धने
पुरादौ मंत्रादौ यशसि पठने राज्यकदने ।
गवादौ भक्तादौ सुहृदि दिवि वाहे खविषये
कुधर्मे वांछा स्यात् सुरतरुमुखे मोहवशतः ॥ २ ॥

अर्थः—इस दीन जीवकी मोहके वशसे पुत्र, पुत्री, स्त्री, माता, शरीर, घर, पुस्तक, धन, पुर, नगर, मंत्र, कीर्ति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थोंका अभ्यास, राज्य, युद्ध, गौ, हाथी, भोजन, मित्र, स्वर्ग सवारी, इन्द्रियोंके विषय, कुधर्म और कल्पवृक्ष आदिमें वांछा होती है ।

भावार्थः—जब तक इस जीवके मोहका उदय रहता है तब तक यह पुत्र, पुत्री, स्त्री, शरीर आदि परपदार्थोंको अपनाता रहता है और उनके फंदेमें फँसकर आत्मिक शुद्धचिद्रूपको सर्वथा भूला देता है; परन्तु मोहके नाश होते ही इसे अपने परायेका ज्ञान हो जाता है, इसलिये उस समय, पुत्र, धन आदि पदार्थोंकी ओर यह झांककर भी नहीं देखता ।। २ ।।

किं पर्यायैर्विभावैस्तत्र हि चिदचित्तां व्यञ्जनार्थाभिधानैः
रागद्वेषाप्तिबीजैर्जगति परिचितैः कारणैः संसृतेश्च ।
मत्वैवं त्वं चिदात्मन् परिहर सततं चिंतनं मंक्षु तेषां
शुद्धे द्रव्ये चिति स्वे स्थितिमचलतयांतर्दृशा संविधेहि ।। ३ ।।

अर्थः—हे चिदात्मन् ! संसारमें चेतन और अचेतनकी जो अर्थ और व्यंजनपर्याय मालूम पड़ रही हैं वे सब स्वभाव नहीं विभाव हैं, निंदित हैं, रागद्वेष आदिकी और संसारकी कारण हैं, ऐसा भले प्रकार निश्चय कर तू इनका विचार करना छोड़ दे और आत्मिक शूद्धचिद्रूपको अपनी अन्तर्दृष्टिसे भले प्रकार पहिचान कर उसीमें निश्चलरूपसे स्थिति कर ।

भावार्थः—यदि कोई अपना है तो शुद्धचिद्रूप ही है शुद्ध चिद्रूपसे भिन्न कोई पदार्थ अपना नहीं, राग-द्वेष, मतिज्ञान और नरनारक आदि पर्यायोंको अपने मानना भूल है; क्योंकि ये विभावपर्याय हैं स्वभाव नहीं, महानिंदित हैं । इनको अपनानेसे रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है और संसारमें भ्रमण

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

करना पड़ता है, इसलिये जो जीव निराकुलतामय सुखके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे शरीर आदि पर्यायोंका चिंतवन करना छोड़ दें और आत्मिक शुद्धचिद्रूपमें प्रेम करें ।। ३ ।।

स्वर्णैरत्नैर्गृहैः स्त्रीसुतरथशिबिकाश्वेभभृत्यैरसंख्यै-
र्भूषावस्त्रैः स्रगाद्यैर्जनपदनगरैश्चामरैः सिंहपीठैः ।
छत्रैरस्त्रैर्विचित्रैर्वरतरशयनैर्भाजनैर्भोजनैश्च
लब्धैः पांडित्यमुख्यैर्न भवति पुरुषो व्याकुलस्तीव्रमोहात् ।। ४ ।।

अर्थः—यह पुरुष मोहकी तीव्रतासे आकुलताके कारण-स्वरूप भी स्वर्ण, रत्न, घर, स्त्री, पुत्र, रथ, पालकी, घोड़े, हाथी, भृत्य, भूषण, वस्त्र, माला, देश, नगर, चमर, सिंहासन, छत्र, अस्त्र, शयन, भोजन और विद्वत्ता आदिसे व्याकुल नहीं होता ।

भावार्थः—जहां चित्तको आकुलता नहीं रहती, वही शांति मिलती है । स्वर्ण, रत्न, घर, स्त्री आदि पदार्थोंकी प्राप्ति–अप्राप्तिमें चित्त सदा व्याकुल बना रहता है, इसलिए उनको अपनानेसे आत्मा निराकुल नहीं हो सकता; परन्तु यह जीव मोहकी तीव्रतासे ऐसा मूढ़ हो रहा है कि स्वर्ण, स्त्री, पुत्र आदि पदार्थोंके अपनानेसे अनन्त कष्ट भोगने पर भी यह जरा भी कष्ट नहीं मानता, उनसे रत्तीभर भी इसका चित्त व्याकुल नहीं होता ।। ४ ।।

रैगोभार्याः सुताश्वा गृहवसनरथाः क्षेत्रदासीभशिष्याः
कर्पूराभूषणाद्यापणवनशिबिका बन्धुमित्रायुधाद्याः ।
मंचा वाप्यादि भृत्यातपहरणखगाः सूर्यपात्रासनाद्याः
दुःखानां हेतवोऽमी कलयति विमतिः सौख्यहेतून् किलैतान् ।।५।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—देखो ! इस बुद्धिशून्य जीवकी समझदारी ! जो धन, गाय, स्त्री, पुत्री, अश्व, घर, वस्त्र, रथ, क्षेत्र, दासी, हाथी, शिष्य, कपूर, आभूषण, दुकान, वन, पालकी, बन्धु, मित्र, आयुध, मांच (पलंग) बावड़ी, मृत्य, छत्र, पक्षी, सूर्य, भाजन और आसन आदि पदार्थ दुःखके कारण हैं, जिन्हें अपनानेसे जरा भी सुख नहीं मिलता । उन्हें यह सुखके कारण मानता है । अपने मान रात दिन उनको प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करता रहता है ।। ५ ।।

हंस ! स्मरसि द्रव्याणि पराणि प्रत्यहं यथा ।
तथा चेत् शुद्धचिद्रूपं मुक्तिः किं ते न हस्तगा ।। ६ ।।

अर्थः—हे आत्मन् ! जिस प्रकार प्रतिदिन तूं परद्रव्योंका स्मरण करता है, स्त्री, पुत्र, आदिको अपना मान उन्हींकी चिंतामें मग्न रहता है, उसीप्रकार यदि तूं शुद्धचिद्रूपका भी स्मरण करे–उसीके ध्यान और चिन्तवनमें अपना समय व्यतीत करे तो क्या तेरे लिये मोक्ष समीप न रह जाय ? अर्थात् तू बहुत शीघ्र हो मोक्ष सुखका अनुभव करने लग जाय ।। ६ ।।

लोकस्य चात्मनो यत्नं रंजनाय करोति यत् ।
तच्चेन्निराकुलत्वाय तर्हि दूरे न तत्पदं ।। ७ ।।

अर्थः—जिस प्रकार यह जीव अपने और लोकके रंजायमान करनेके लिये प्रतिदिन उपाय करता रहता है, उसीप्रकार यदि निराकुलतामय–मोक्ष सुखकी प्राप्तिके लिये उपाय करे तो वह मोक्ष स्थान जरा भी उसके लिये दूर न रहे–बहुत जल्दी प्राप्त हो जाय ।। ७ ।।

रंजने परिणामः स्याद् विभावो हि चिदात्मनि ।
निराकुले स्वभावः स्यात् तं विना नास्ति सत्सुखं ।। ८ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—अपने और परके रंजायमान करनेवाले चिदात्मा में जो जीवका परिणाम लगता है वह तो विभावपरिणाम ही है और निराकुल शुद्धचिद्रूपमें जो लगता है वह स्वभावपरिणाम है तथा इस परिणामसे ही सच्चे सुखकी प्राप्ति होती है—उसके बिना कदापि सच्चा सुख नहीं मिल सकता ॥ ८ ॥

संयोगविप्रयोगौ च रागद्वेषौ सुखासुखे ।
तद्भवेऽत्रभवे नित्यं दृश्येते तद् भवं त्यज ॥ ९ ॥

अर्थः—क्या तो यह भव और क्या पर भव ? दोनों भवोंमें जीवको संयोग, वियोग, रागद्वेष और सुख-दुःखका सामना करना पड़ता है, इसलिये हे आत्मन् ! तू इस संसारका त्याग कर दे ।

भावार्थः—इष्ट स्त्री-पुत्र आदिसे मिलाप होना संयोग है और उनसे जुदाईका नाम वियोग है । पर पदार्थोंसे प्रेम करना राग और वैर रखना द्वेष है । इष्ट पदार्थोंके सम्बन्धसे आत्मामें कुछ शांति होना सुख और अशांतिका होना दुःख है । ये सब बातें इस भव-परभव दोनों भवोंमें प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं और इनके सम्बन्धसे सदा परिणामोंमें विकलता बनी रहती है इसलिये हे आत्मन् ! यदि तू निराकुलतामय सुखका अनुभव करना चाहता है तो तूँ उसके मूल कारण संसारका ही सर्वथा त्याग कर दे—मोक्ष स्थानको अपना घर बना ॥ ९ ॥

शास्त्राद् गुरोः सधर्मादेर्ज्ञानमुत्पाद्य चात्मनः ।
तस्यावलम्बनं कृत्वा तिष्ठ मुंचान्यसंगतिं ॥ १० ॥

अर्थः—शास्त्र, सद्गुरु और साधर्मी भाइयोंसे अपनी आत्माका वास्तविक स्वरूप पहिचानकर उसी (आत्मा)का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवलंबन कर, उसीके स्वरूपका मनन, ध्यान और चिन्तवन कर, पर पदार्थोंका संसर्ग करना छोड़ दे—उन्हें अपने मत मान ॥ १० ॥

अवश्यं च परद्रव्यं नश्यत्येव न संशयः ।
तद्विनाशे विधातव्यो न शोको धीमता क्वचित् ॥ ११ ॥

अर्थः—जो परद्रव्य है उनका नाश अवश्य होता है। कोई भी उसके नाशको नहीं रोक सकता, इसलिये जो पुरुष बुद्धिमान हैं—स्वद्रव्य और परद्रव्यके स्वरूपके भले प्रकार जानकार हैं उन्हें चाहिये कि वे उनके नाश होने पर कभी किसी प्रकारका शोक न करें ॥ ११ ॥

त्यक्त्वा मां चिदचित्संगा यास्यंत्येव न संशयः ।
तानहं वा च यास्यामि तत्प्रीतिरिति मे वृथा ॥ १२ ॥

अर्थः—ये चेतन–अचेतन दोनों प्रकारके परिग्रह अवश्य मुझे छोड़ देंगे और मैं भी सदा काल इनका संग नहीं दे सकता, मुझे भी ये अवश्य छोड़ देने पड़ेंगे। इसलिये मेरा इनके साथ प्रेम करना व्यर्थ है।

भावार्थः—स्त्री–पुत्र आदि चेतन स्वर्ण रत्न आदि अचेतन परिग्रह यदि सदा काल मेरे साथ रहे और मैं सदा काल इनके साथ रहूँ तब तो इनके साथ मेरा प्रेम करना ठीक है, परन्तु मेरा तो इनके साथ जितने दिनोंका सम्बन्ध है उतने दिनोंका है—अवधिके पूर्ण हो जाने पर न मैं अधिक काल तक इनके साथ रह सकता हूँ और न ये ही मेरे साथ रह सकते हैं, इसलिये मेरा इन्हें अपनाना, इनके साथ प्रेम करना निष्प्रयोजन है ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुस्तकैर्यत्परिज्ञानं परद्रव्यस्य मे भवेत् ।
तद्धेयं किं न हेयानि तानि तत्त्वावलंबिनः ॥ १३ ॥

अर्थः—मैं अब तत्त्वावलम्बी हो चुका हूँ—अपना और परायेका मुझे पूर्ण ज्ञान हो चुका है, इसलिये शास्त्रोंसे उत्पन्न हुआ परद्रव्योंका ज्ञान भी जब मेरे लिये हेय—त्यागने योग्य है तब उन परद्रव्योंके ग्रहणका तो अवश्य ही त्याग होना चाहिये उनकी ओर झांककर भी मुझे नहीं देखना चाहिये ।

भावार्थः—यद्यपि आत्मस्वरूपके जाननेके लिये शास्त्र और गुरु आदिके उपदेशसे परद्रव्यके स्वरूपका ज्ञान करना पड़ता है; परन्तु जिसकी दृष्टि सर्वथा शुद्धचिद्रूपकी ओर झुक गई है—जो तत्त्वावलंबी हो गया है उसके लिये जब पुस्तकोंसे होता परद्रव्यका ज्ञान भी हेय है—त्यागसे योग्य है (क्योंकि वह शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें बाधक है) तब उसे परद्रव्योंका तो सर्वथा त्याग कर देना ही चाहिये; क्योंकि वे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिमें बलवान बाधक हैं—परद्रव्योंके अपनानेसे तो शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति कभी हो ही नहीं सकती ॥ १३ ॥

स्वर्णैरत्नैः कलत्रैः सुतगृहवसनैर्भूषणं राज्यखार्थैं—
गोहस्त्यश्वैश्च पद्गैः रथवरशिविकामित्रमिष्टान्नपानैः ।
चिंतारत्नैर्निधानैः सुरतरुनिवहैः कामधेन्वा हि शुद्ध-
चिद्रूप्राप्तिं विनांगी न भवति कृतकृत्यः कदा क्वापि कोऽपि ॥१४॥

अर्थः—कोई भी प्राणी क्यों न हो जब तक उसे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति नहीं होती तब तक चाहे उसके पास स्वर्ण, रत्न, स्त्री, पुत्र, घर, वस्त्र, भूषण, राज्य, इन्द्रियोंके उत्तमोत्तम भोग, गाय, हाथी, अश्व, पदातिसेना, रथ, पालकी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मित्र, महामिष्ट अन्नपान, चिन्तामणि रत्न, खजाने, कल्पवृक्ष, और कामधेनु आदि अगणित पदार्थ क्यों न मौजूद हों, उनसे वह कहीं किसी कालमें भी कृतकृत्य नहीं हो सकता।

भावार्थः— स्वर्ण, रत्न, हाथी, घोड़े आदि सांसारिक पदार्थ अस्थिर हैं—सदाकाल विद्यमान नहीं रह सकते और पर हैं; परन्तु शुद्धचिद्रूप शाश्वत है कभी भी इनका नाश नहीं हो सकता और निज है, इसलिये स्वर्ण आदि पदार्थोंके प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य कृतकृत्य नहीं हो सकता—संसारमें उसे बहुतसे कार्य करनेके लिये बाकी रह जाते हैं; किन्तु जिस समय शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति हो जाती है उस समय कोई काम करनेके लिये बाकी नहीं रहता। शुद्धचिद्रूपका स्वामी जीव सदाकाल निराकुलतामय शाश्वत सुखका अनुभव करता रहता है ॥ १४ ॥

परद्रव्यासनाभ्यासं कुर्वन् योगी निरंतरं ।
कर्मांगादिपरद्रव्यं मुक्त्वा क्षिप्रं शिवी भवेत् ॥ १५ ॥

अर्थः—निरंतर परद्रव्योंके त्यागका चिन्तवन करनेवाला योगी शीघ्र ही कर्म और शरीर आदि परद्रव्योंसे रहित हो जाता है और परमात्मा बन मोक्षसुखका अनुभव करने लगता है ॥ १५ ॥

कारणं कर्मबन्धस्य परद्रव्यस्य चिंतनं ।
स्वद्रव्यस्य विशुद्धस्य तन्मोक्षस्यैव केवलं ॥ १६ ॥

अर्थः—स्त्री, पुत्र आदि परद्रव्योंके चिन्तवनसे केवल कर्म बन्ध होता है और स्वद्रव्य—विशुद्धचिद्रूपके चिन्तवन करनेसे केवल मोक्षसुख ही प्राप्त होता है—संसारमें भटकना नहीं पड़ता ॥ १६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रादुर्भवन्ति निःशेषा गुणाः स्वाभाविकाश्रितः ।
दोषा नश्यंत्यहो सर्वे परद्रव्यवियोजनात् ॥ १७ ॥

अर्थः—समस्त परद्रव्योंके त्यागसे–उन्हें न अपनानेसे आत्माके स्वाभाविक गुण–केवलज्ञान आदि प्रकट होते हैं और दोषोंका नाश होता है ॥ १७ ॥

समस्तकर्मदेहादिपरद्रव्यविमोचनात् ।
शुद्धस्वात्मोपलब्धिर्या सा मुक्तिरिति कथ्यते ॥ १८ ॥

अर्थः—कर्म और शरीर आदि परद्रव्योंके सर्वथा त्यागसे शुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति होती है और उसे ही यतिगण मोक्ष कहकर पुकारते हैं ।

भावार्थः—समस्त कर्मोंका नाश हो जाना मोक्ष बतलाया है और वही विशुद्धचिद्रूप है; क्योंकि विशुद्धचिद्रूपकी प्राप्ति समस्त कर्मोंके नाशसे होती है, इसलिये विशुद्ध चिद्रूप और मोक्षके नाममें भेद होने पर भी अर्थमें कुछ भी भेद नहीं है ॥ १८ ॥

अतः **स्वशुद्धचिद्रूपलब्धये तत्त्वविन्मुनिः ।**
वपुषा मनसा वाचा परद्रव्यं परित्यजेत् ॥ १९ ॥

अर्थः—इसलिये जो मुनिगण भले प्रकार तत्त्वोंके जानकार हैं स्व और परका भेद पूर्णरूपसे जानते हैं, वे विशुद्ध चिद्रूपकी प्राप्तिके लिये मन, वचन और कायसे परद्रव्यका सर्वथा त्याग कर देते हैं—उनमें जरा भी ममत्व नहीं करते ॥ १९ ॥

दिक्चेलैको हस्तपात्रो निरीहः साम्यारूढस्तत्त्ववेदी तपस्वी ।
मौनी कर्मौघेभसिंहो विवेकी सिद्ध्यै स्यात्स्वे चित्स्वरूपेऽभिरक्तः ॥२०॥

अर्थः—जो मुनि दिगम्बर, पाणिपात्रवाले, समस्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकारकी इच्छाओंसे रहित, समताके अवलंबी, तत्त्वोंके वेत्ता, तपस्वी, मौनी, कर्मरूपी हाथियोंके विदारण करनेमें सिंह, विवेकी और शुद्धचिद्रूपमें लीन हैं वे ही परमात्मपद प्राप्त करते हैं—वे ही ईश्वर कहे जाते हैं, अन्य नहीं ।। २० ।।

इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषण विरचितायां तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपं लब्ध्यै परद्रव्यत्याग प्रतिपादकः पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा विरचित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये परद्रव्योंके त्यागका प्रतिपादन करनेवाला पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोलहवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिये निर्जन स्थानका उपदेश

सद्बुद्धेः परंजनाकुलविधित्यागस्य साम्यस्य च
ग्रन्थार्थग्रहणस्य मानसवचोरोधस्य बाधाहतेः ।
रागादित्यजनस्य काव्यजमतेश्चेतो विशुद्धेरपि
हेतुः स्वोत्थसुखस्य निर्जनमहो ध्यानस्य वा स्थानकं ॥ १ ॥

अर्थः—उत्तमज्ञान, परको रंजायमान करनेमें आकुलताका त्याग, समता, शास्त्रोंके अर्थका ग्रहण, मन और वचनका निरोध, बाधा–विघ्नोंका नाश, रागद्वेष आदिका त्याग, काव्योंमें बुद्धिका लगना, मनकी निर्मलता, आत्मिक सुखका लाभ और ध्यान, निर्जन एकान्त स्थानके आश्रय करनेसे ही होता है ।

भावार्थः—जब तक उत्तम ज्ञान, समता, शास्त्र, ध्यान और उत्तम आत्मिक सुख आदि प्राप्त नहीं होते तब तक किसी प्रकारसे आत्माको शाँति नहीं मिल सकती और उनकी प्राप्ति एकांत स्थानके आश्रयसे ही होती है, इसलिये जो मनुष्य उत्तम ज्ञान आदिके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिये कि वे पवित्र और एकांत स्थानका अवश्य आश्रय करें ॥ १ ॥

पार्श्ववर्त्यंगिना नास्ति केनचिन्मे प्रयोजनं ।
मित्रेण शत्रुणा मध्यवर्त्तिना वा शिवार्थिनः ॥ २ ॥

अर्थः—मैं शिवार्थी हूं—अपनी आत्माको निराकुलतामय सुखका आस्वाद कराना चाहता हूं, इसलिये मुझे शत्रु, मित्र और मध्यस्थ किसी भी पासमें रहनेवाले जीवसे कोई प्रयोजन नहीं अर्थात् पासमें रहनेवाले जीव, मित्र, शत्रु और मध्यस्थ सब मेरे कल्याणके बाधक हैं ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रोर्वृद्धौ समुद्रः सरिदमृतवलं वर्द्धते मेघवृष्टे-
र्मोहानां कर्मबन्धो गद इव पुरुषस्यामभुक्तेरवश्यं ।
नानावृत्ताक्षराणामवनिवरतले छंदसां प्रस्तरश्च
दुःखौघागो विकल्पास्त्रववचनकुलं पार्श्ववर्त्यंगिनां हि ॥ ३ ॥

अर्थः—जिस प्रकार चन्द्रमाके संबंधसे समुद्र, वर्षासे नदीका जल, मोहके सम्बन्धसे कर्मबन्ध, कच्चे भोजनसे पुरुषोंके रोग और नाना प्रकारके छन्दके अक्षरोंसे शोभित छन्दोंके सम्बन्धसे प्रस्तार वृद्धित होते हैं, उसी प्रकार पार्श्ववर्ती (नजदीकवर्ती) जीवोंके सम्बन्धसे नाना प्रकारके दुःख और विकल्पमय वचनोंकी वृद्धि होती है ।

भावार्थः—जिस प्रकार समुद्रकी वृद्धिमें चन्द्रमा, नदीके जलकी बढवारोंमें मेघ, कर्मबन्धमें मोह, रोगकी वृद्धिमें अपक्व भोजन और छन्दोंकी रचनामें प्रस्तार कारण हैं, उसी प्रकार पार्श्ववर्ती जीवोंका सम्बन्ध नाना प्रकारके दुःखोंके देने और परिणामोंके विकल्पमय करनेमें कारण है, इसलिये कल्याणके अभिलाषियोंको वह सर्वथा वर्जनीय है ॥ ३ ॥

वृद्धिं यात्येधसो वन्हिर्वृद्धौ धर्मस्य वा तृषा ।
चिंता संगस्य रोगस्य पीडा दुःखादि संगतेः ॥ ४ ॥

अर्थः—जिस प्रकार ईन्धनसे अग्निकी, धुपसे प्यासकी, परिग्रहसे चिन्ताकी और रोगसे पीड़ाकी वृद्धि होती है, उसी प्रकार प्राणियोंकी संगतिसे पीड़ा और दुःख आदि सहन करने पड़ते हैं ॥ ४ ॥

विकल्पः स्याज्जीवे निगडनगजंबालजलधि-
प्रदावाग्न्यातापप्रगदहिमताजालसदृशः ।
वरं स्थानं छेत्रीपविरविकरागस्ति जलदा-
गदज्वालाशस्त्रीसममतिभिदे तस्य विजनं ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—जीवोंके विकल्प—वेड़ी, पर्वत, कीचड़, समुद्र, दावाग्निका संताप, रोग, शीतलता और जालके समान होते हैं, इसलिये उनके नाशके लिये छैनी, वज्र, सूर्य, अगस्त्य नक्षत्र, मेघ, औषध, अग्नि और छुरीके समान निर्जन स्थानका ही आश्रय करना उचित है ।

भावार्थः—जिस प्रकार बेड़ीके काटनेमें छैनी, पर्वतके खंड करनेमें वज्र, कीचड़के सुखानेमें सूर्य, समुद्रके जलको शुष्क करनेमें अगस्त्य ऋषि, वनाग्निके बुझानेमें मेघ, रोगके नाश करनेमें औषधि, शीतलता नष्ट करनेमें अग्नि और जालके काटनेमें छुरी कारण है । बिना छैनी आदिके बेड़ी आदिका फन्द कट नहीं सकता, उसी प्रकार विकल्पोंके नाश करनेमें निर्जन स्थान कारण है । निर्जन स्थानका बिना आश्रय किये विकल्प कभी नहीं हट सकते ॥ ५ ॥

तपसां बाह्य भूतानां विविक्तशयनासनं ।
महत्तपो गुणोद्भूतेरागत्यागस्य हेतुतः ॥ ६ ॥

अर्थः—बाह्य तपोंमें विविक्तशयनासन (एकांत स्थानमें सोना और बैठना) तपको महान तप बतलाया है; क्योंकि इसके आराधन करनेसे आत्मामें गुणोंकी प्रगटता होती है और मोहका नाश होता है ।

भावार्थः—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशयनासन और कायक्लेशके भेदसे बाह्य तप छै प्रकारका है; परन्तु उन सबमें उत्तम और महान तप विविक्तशयनासन ही है; क्योंकि इसके आराधन करनेसे आत्मामें नाना प्रकारके गुणोंकी प्रकटता और समस्त मोहकी नास्ति होती है ॥ ६ ॥

काचिच्चिंचता संगतिः केनचिच्च रोगादिभ्यो वेदना तीव्रनिद्रा ।
प्रादुर्भूतिः क्रोधमानादिकानां मूर्च्छा ज्ञेया ध्यानविध्वंसिनी च ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—स्त्री, पुत्र आदिकी चिंता, प्रणियोंके साथ संगति रोग आदिसे वेदना, तीव्रनिद्रा और क्रोध, मान आदि कषायोंकी उत्पत्ति होना मूर्छा है और इस मूर्च्छासे ध्यानका सर्वथा नाश होता है ।

भावार्थः—स्त्री, पुत्र आदि मेरे हैं । इस प्रकारके परिणामका नाम मूर्च्छा है, इसलिये इससे मनुष्यको नाना प्रकारकी चितायें, प्राणियोंके साथ संगति, रोग आदिसे तीव्र वेदना, अधिक निन्द्रा, क्रोध, मान, माया आदि कषायोंकी उत्पत्ति होती है तथा ध्यानका नाश होता है—मूर्छित मनुष्य किसी प्रकारका ध्यान नहीं कर सकता ।। ७ ।।

संगत्यागो निर्जनस्थानकं च तत्त्वज्ञानं सर्वचिंताविमुक्तिः ।
निर्बाधत्वं योगरोधो मुनीनां मुक्त्यै ध्याने हेतवोऽमी निरुक्ताः ॥८॥

अर्थः—बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग, एकांत स्थान, तत्त्वोंका ज्ञान, समस्त प्रकारकी चिंताओंसे रहितपना, किसी प्रकारकी बाधाका न होना और मन, वचन तथा कायके वश करना ये ध्यानके कारण हैं और इनका आश्रय करनेसे मुनियोंको मोक्षकी प्राप्ति होती है ।। ८ ।।

विकल्पपरिहाराय संगं मुञ्चंति धीधनाः ।
संगतिं च जनैः सार्द्ध कार्यं किंचित् स्मरंति न ॥ ९ ॥

अर्थः—जो मनुष्य बुद्धिमान हैं-स्व और परके स्वरूपके जानकार होकर अपनी आत्माका कल्याण करना चाहते हैं, वे संसारके कारणस्वरूप विकल्पोंके नाश करनेके लिये बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्याग कर देते हैं, दूसरे मनुष्योंकी संगति और किसी कार्यका चिन्तवन भी नहीं करते ।। ९ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृश्चिका युगपत्स्पृष्टाः पीडयंति यथांगिनः ।

विकल्पाश्च तथात्मानं तेषु सत्सु कथं सुखं ॥ १० ॥

अर्थः—जिस प्रकार शरीर पर एक साथ लगे हुए अनेक बिच्छू प्राणीको काटते और दुःखित बनाते हैं, उसी प्रकार अनेक प्रकारके विकल्प भी आत्माको बुरी तरह दुखाते हैं। जरा भी शांतिका अनुभव नहीं करने देते, इसलिए उन विकल्पोंकी मौजूदगीमें आत्माको कैसे सुख हो सकता है? विकल्पोंके जालमें फँसकर रत्तीभर भी यह जीव सुखका अनुभव नहीं कर सकता ॥ १० ॥

बाह्यसंगतिसंगस्य त्यागे चेन्मे परं सुखं ।

अन्तः संगतिसंगस्य भवेत् किं न ततोऽधिकं ॥ ११ ॥

अर्थः—जब मुझे बाह्य संगतिके त्यागसे ही परम सुखकी प्राप्ति होती है तब अन्तरंग संगतिके त्यागसे तो और भी अधिक सुख मिलेगा।

भावार्थः—जब मुझे स्त्री, पुत्र आदि बाह्य पदार्थोंकी संगतिके त्यागसे ही परम सुख प्राप्त होता है, तब रागद्वेष आदि अन्तरंग पदार्थोंकी संगतिके त्यागसे तो उससे भी अधिक सुख मिलेगा ॥ ११ ॥

बाह्यसंगतिसंगेन सुखं मन्येत मूढधीः ।

तत्त्यागेन सुधीः शुद्धचिद्रूपध्यानहेतुना ॥ १२ ॥

अर्थः—जो पुरुष मुग्ध हैं–अपना–पराया जरा भी भेद नहीं जानते। वे बाह्य पदार्थोंकी संगतिसे अपनेको सुखी मानते हैं; परन्तु जो बुद्धिमान हैं—तत्त्वोंके भले प्रकार वेत्ता हैं, वे यह जानकर कि संगतिका त्याग ही शुद्धचिद्रूपके ध्यानमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण है–उसके त्यागसे ही शुद्धचिद्रूपका ध्यान हो सकता है, बाह्य पदार्थोंका सहवास न करनेसे ही अपनेको सुखी मानते हैं ॥ १२ ॥

अवमौद्‌र्यात्साध्यं विविक्तशय्यासनाद्विशेषेण ।
अध्ययनं सध्यानं मुमुक्षुमुख्याः परं तपः कुर्युः ॥ १३ ॥

अर्थः—जो पुरुष मुमुक्षुओंमें मुख्य हैं। बहुत जल्दी मोक्ष जाना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे अवमौदर्य और विविक्तशय्यासनकी सहायतासे निष्पन्न ध्यानके साथ अध्ययन, स्वाध्यायरूप परम तपका अवश्य आराधन करें।

भावार्थः—ध्यान और स्वाध्याय तप तभी सिद्ध हो सकते हैं, जब अवमौदर्य (थोड़ा आहार करना) और विविक्तशय्यासन तपोंका विशेष रूपसे आश्रय किया जाय; क्योंकि जो मनुष्य गरिष्ठ या भरपेट भोजन करेगा और जनसमुदायमें रहेगा, वह ध्यान और स्वाध्याय कदापि नहीं कर सकता, इसलिए उत्तम पुरुषोंको स्वाध्याय और ध्यानकी सिद्धिके लिए आलस्य न दबा बैठे, इस कारण बहुत कम आहार और एकान्त स्थानका आश्रय करना चाहिए ॥ १३ ॥

ते वन्द्याः गुणिनस्ते च ते धन्यास्ते विदांवराः ।
वसंति निर्जने स्थाने ये सदा शुद्धचिद्रताः ॥ १४ ॥

अर्थः—जो मनुष्य शुद्धचिद्रूपमें अनुरक्त हैं और उसकी प्राप्तिके लिए निर्जन स्थानमें निवास करते हैं। संसारमें वे ही वंदनीक सत्कारके योग्य, गुणी, धन्य और विद्वानोंके शिरोमणि हैं अर्थात् उत्तम पुरुष उन्हींका आदर सत्कार करते हैं और उन्हें ही गुणी, धन्य और विद्वानोंमें उत्तम मानते हैं ॥ १४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्जनं सुखदं स्थानं ध्यानाध्ययनसाधनं ।
रागद्वेषविमोहानां शातनं सेवते सुधीः ॥ १५ ॥

अर्थः—यह निर्जन स्थान अनेक प्रकारके सुख प्रदान करनेवाला है, ध्यान और अध्ययनका कारण है, राग, द्वेष और मोहका नाश करनेवाला है, इसलिए बुद्धिमान पुरुष अवश्य उसका आश्रय करते हैं ॥ १५ ॥

सुधाया लक्षणं लोका वदन्ति बहुधा मुधा ।
बाधाजंतुजनैर्मुक्तं स्थानमेव सतां सुधा ॥ १६ ॥

अर्थः—लोक सुधा (अमृत)का लक्षण भिन्न ही प्रकारसे बतलाते हैं; परन्तु वह ठीक नहीं मिथ्या है; क्योंकि जहां पर किसी प्रकारकी बाधा, डांस, मच्छर आदि जीव और जन समुदाय न हो ऐसे एकान्त स्थानका नाम ही वास्तवमें सुधा है ।

भावार्थः—जो सुख देनेवाला हो वही सुधा (अमृत) है । शुद्धचिद्रूपके अभिलाषियोंको समस्त प्रकारके उपद्रवोंसे रहित एकान्त स्थान सुखका देनेवाला है, इसलिए उनके लिए वही अमृत है और लोककथित अमृत, अमृत नहीं है ॥ १६ ॥

भूमिगृहे समुद्रादितटे पितृवने वने ।
गुहादौ वसति प्राज्ञः शुद्धचिद्ध्यानसिद्धये ॥ १७ ॥

अर्थः—जो मनुष्य बुद्धिमान हैं—हित–अहितके जानकार हैं, वे शुद्धचिद्रूपके ध्यानकी सिद्धिके लिए जमीनके भीतरी घरोंमें, सुरंगोंमें, समुद्र, नदी आदिके तटों पर, स्मशान भूमियोंमें और वन, गुफा आदि निर्जन स्थानोंमें निवास करते है ॥ १७ ॥

विविक्तस्थानकाभावात् योगिनां जनसंगमः ।
तेषामालोकनेनैव वचसा स्मरणेन च ॥ १८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायते मनसः स्पंदस्ततो रागादयोऽखिलाः ।
तेभ्यः क्लेशो भवेत्तस्मान्नाशं याति विशुद्धता ॥ १९ ॥
तया विना न जायेत शुद्धचिद्रूपचिंतनं ।
विना तेन न मुक्तिः स्यात् परमाखिलकर्मणां ॥ २० ॥
तस्माद्विविक्तसुस्थानं ज्ञेयं संक्लेशनाशनं ।
मुमुक्षुयोगिनां मुक्तेः कारणं भववारणं ॥ २१ ॥
॥ चतुःफलं ॥

अर्थः—एकान्त स्थानके अभावसे योगियोंको जनोंके संघमें रहना पड़ता है, इसलिए उनके देखने, वचन सुनने और स्मरण करनेसे उनका मन चंचल हो उठता है । मनकी चंचलतासे विशुद्धिका नाश होता है और विशुद्धिके बिना शुद्धचिद्रूपका चिंतवन नहीं हो सकता तथा विना उसके चिंतवन किए समस्त कर्मोंके नाशसे होने वाला मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता, इसलिए मोक्षाभिलाषी योगियोंको चाहिए कि वे एकान्त स्थानको समस्त दुःखोंका दूर करनेवाला, मोक्षका कारण और संसारका नाश करनेवाला जान अवश्य उसका आश्रय करें ॥ १८–२१ ॥

इति मुमुक्षु भट्टारक श्री ज्ञानभूषण विरचितायां
तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपलब्ध्यै निर्जनस्थाना-
श्रयणप्रतिपादकः षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषणनिर्मित
तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें "शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके लिए
निर्जन स्थानके आश्रयका" बतलानेवाला
सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १६ ॥

□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्रहवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपमें प्रेमवर्धनका उपदेश

मुक्ताविद्रुमरत्नधातुरसभूवस्त्रान्नरुग्भूरुहां
स्त्रीभाश्वाहिगवां नृदेवविदुषां पक्षांबुगानामपि ।
प्रायः संति परीक्षकाः भुवि सुखस्यात्यल्पका हा यतो
दृश्यंते खभवे रताश्च बहवः सौख्ये च नातींद्रिये ॥ १ ॥

अर्थः—इस संसारमें मोती, मूंगा, रत्न, धातु, रस, पृथ्वी, वस्त्र, अन्न, रोग, वृक्ष, स्त्री, हाथी, घोड़े, सर्प, गाय, मनुष्य, देव, विद्वान, पक्षी और जलचर जीवोंकी परीक्षा करने वाले अनेक मनुष्य हैं । इन्द्रियोंसे उत्पन्न हुए ऐन्द्रियिक सुखमें भी बहुतसे अनुरक्त हैं; परन्तु निराकुलतामय सुखकी परीक्षा और उसमें अनुराग करनेवाले बहुत ही थोड़े हैं ।

भावार्थः—इस संसारमें परीक्षा करनेवाले विद्वान पुरुषोंकी और सुखके अनुभव करनेवालोंकी कमी नहीं है; परन्तु वे यह नहीं समझते हैं कि हमें किस बातकी परीक्षा और कैसे सुखका अनुभव करना चाहिए ? बहुतसे मनुष्य मोती, मूंगा, रत्न, स्वर्ण आदि धातु, उत्तमोत्तम रस, पृथ्वी, रोग, हाथी, अश्व आदि पदार्थोंकी परीक्षामें प्रवीण हैं । इन्द्रियजन्य सुखोंका भी पूर्णतया अनुभव करना जानते हैं; परन्तु उनकी उस प्रकारकी परीक्षा और अनुभव कार्यकारी नहीं; क्योंकि ये सब पदार्थ अनित्य हैं । नित्य पदार्थ निराकुलतामय सुख है, इसलिए उसीकी परीक्षा और अनुभवसे कार्य और कल्याण हो सकता है ॥ १ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्द्रव्यं स्ववशं निजस्थमभयं नित्यं निरीहं शुभं
निर्द्वंद्वं निरुपद्रवं निरुपमं निर्बंधमूहातिगं ।
उत्कृष्टं शिवहेत्वदोषममलं यद् दुर्लभं केवलं
स्वात्मोत्थं सुखमीदृशं च स्वभवं तस्माद्विरुद्धं भवेत् ॥ २ ॥

अर्थः—यह आत्मोत्थ निराकुलतामय सुख, निर्द्रव्य है–परद्रव्योंके संपर्कसे रहित है, स्वाधीन. आत्मिक, भयोंसे रहित, नित्य, समस्त प्रकारकी इच्छाओंसे रहित, शुभ, निर्द्वंद्व, सब प्रकारके उपद्रवोंसे रहित, अनुपम, कर्मबन्धोंसे रहित, तर्क–वितर्कके अगोचर, उत्कृष्ट, कल्याणीका करनेवाला, निर्दोष, निर्मल और दुर्लभ है; परन्तु इन्द्रियजन्य सुख सर्वथा इसके विरुद्ध है । [वह परद्रव्योंके सम्बन्धसे होता है, पराधीन, पर, नाना प्रकारके भयोंका करनेवाला, विनाशीक अनेक प्रकारकी इच्छा उत्पन्न करनेवाला, अशुभ, आकुलतामय, अनेक प्रकारके उपद्रवोंको खड़ा करनेवाला, महानिन्दनीक, कर्मबन्धका कारण. महानिकृष्ट, दुःख देनेवाला, अनेक प्रकारके दोष और मलोंका भंडार तथा सुलभ है], (इसलिए सुखाभिलाषी जीवोंको चाहिए कि निराकुलतामय सुखकी प्राप्तिका उपाय करें) ॥ २ ॥

वैराग्यं त्रिविधं निचाय हृदये हित्वा च संगं त्रिधा
श्रित्वा सद्गुरुमागमं च विमलं धृत्वा च रत्नत्रयं ।
त्यक्त्वान्यैः सह संगतिं च सकलं रागादिकं स्थानके
स्थातव्यं निरुपद्रवेऽपि विजने स्वात्मोत्थसौख्याप्तये ॥ ३ ॥

अर्थः—जो पुरुष आत्मिक शांतिमय सुखके अभिलाषी हैं । उसे हस्तगत करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे संसार, शरीर और भोगोंके त्यागरूप तीन प्रकारका वैराग्य धारण

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कर, चेतन, अचेतन और मिश्र तीनों प्रकारका परिग्रह छोड़कर, सद्गुरु, निर्दोष शास्त्र, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्रस्वरूप रत्नत्रयका आश्रय कर, दूसरे जीवोंका सहवास और राग-द्वेष आदिका सर्वथा त्यागकर सब उपद्रवोंसे रहित एकान्त स्थानमें निवास करें ।

भावार्थः—जब तक संसार, शरीर और भोगोंसे ममत्व न हटेगा, स्वर्ण, रत्न, क्रोध, मान, स्त्री, पुत्र, दासी, दास आदि परिग्रहका त्याग नहीं होगा, श्रेष्ठ गुरु, निर्दोष शास्त्र और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका आराधन नहीं किया जायगा, अन्य मनुष्योंका सहवास और रागादि दूर न कर दिए जायेगे और एकान्त स्थानमें निवास नहीं किया जायगा, तव तक निराकुलतामय सुख प्राप्त होना सर्वथा असंभव है, इसलिये जो मनुष्य इस सुखके अभिलाषी हैं उन्हें चाहिए कि वे उपर्युक्त बातों पर अवश्य ध्यान दें ।। ३ ।।

खसुखं न सुखं नृणां किन्त्वभिलाषाग्निवेदनाप्रतीकारः ।
सुखमेव स्थितिरात्मनि निराकुलत्वाद्विशुद्धपरिणामात् ।। ४ ।।

अर्थः—इन्द्रियजन्य सुख, सुख नहीं है; किन्तु मनुष्योंकी अभिलाषारूप अग्निजन्य वेदनाओंका नष्ट करनेका उपाय है और जो अपने चिदानन्दस्वरूप आत्मामें स्थितिका होना है, वह निराकुलतारूप और विशुद्ध परिणामस्वरूप होनेसे सुख ही है ।

भावार्थः—जिस सुखसे हमारी अभिलाषा और वेदनायें नष्ट हों वही वास्तवमें सुख है । इन्द्रियजन्य सुख, सुख नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह परिणाममें दुःख देनेवाला है और अभिलाषा तथा वेदनाओंका उत्पादक है, इसलिए उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुपम सुखको प्राप्त करनेके लिए निराकुलता और विशुद्ध परिणामोंसे अपनी आत्मामें स्थिति करनी चाहिए ।। ४ ।।

नो द्रव्यात्कीर्तितः स्याच्छुभखविषयतः सौधतूर्यत्रिकाद्वा
रूपादिष्टागमाद्वा तदितरविगमात् क्रीडनाद्यादृतुभ्यः ।
राज्यात्संराजमानात् बलवसनसुतात्सत्कलत्रात्सुगीतात्
भूषाद् भूजागयानादिह जगति सुखं तात्त्विकं व्याकुलत्वात् ॥५॥

अर्थः—यह निराकुलतामय तात्त्विक सुख न द्रव्यसे प्राप्त हो सकता है, न कीर्ति, इन्द्रियोंके शुभ विषय, उत्तम महल और गाजे–बाजोंसे मिल सकता है । उत्तमरूप, इष्ट पदार्थोंका समागम, अनिष्टोंका वियोग और उत्तमोत्तम क्रीड़ा आदि भी इसे प्राप्त नहीं करा सकते । छह ऋतु, राज्य राजाकी ओरसे सन्मान, सेना, उत्तम वस्त्र, पुत्र, मनोहारिणी स्त्री, कर्णप्रिय गाना, भूषण, वृक्ष, पर्वत और सवारी आदिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता; क्योंकि द्रव्य आदिके सम्बन्धसे चित्त व्याकुल रहता है और चित्तकी व्याकुलता, निराकुलतामय सुखको रोकनेवाली होती है ।

भावार्थः—चाहे मनुष्य कैसा भी द्रव्यपात्र क्यों न हो जाय । कीर्ति, इन्द्रियोंके विषय, महल, रूप, राज्य आदि पदार्थ भी उसके क्यों न यथेष्ट हो जाँय; परन्तु उनसे वह निराकुलतामय सुखका अनुभव नहीं कर सकता । सदा उसके परिणाम द्रव्य, कीर्ति आदि पदार्थोंके जुटानेमें ही व्यग्र रहते हैं ।। ५ ।।

पुरे ग्रामेऽटव्यां नगशिरसि नदीशादिसुतटे
मठे दर्यां चैत्योकसि सदसि रथादौ च भवने ।
महादुर्गे स्वर्गे पथनभसि लतावस्त्रभवने
स्थितो मोही न स्यात् परसमयरतः सौख्यलवभाक् ॥६॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थः—जो मनुष्य मोहसे मूढ़ और परसमयमें रत हैं—पर पदार्थोंको अपनानेवाले हैं। वे चाहे पुर, गांव, वन, पर्वतके अग्रभाग, समुद्र, नदी आदिके तट, मठ, गुफा, चैत्यालय, सभा, रथ, महल, किले, स्वर्ग, भूमि, मार्ग, आकाश, लतामण्डप और तम्बू आदि स्थानोंमें किसी स्थान पर निवास करे, उसे निराकुलतामय सुखका कण तक प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् मोह और परद्रव्योंका प्रेम निराकुलतामयसुखका बाधक है ॥६॥

निगोते गूथकीटे पशुनृपतिगणे भारवाहे किराते
सरोगे मुक्तरोगे धनवति विधने वाहनस्थे च पद्गे ।
युवादौ बालवृद्धे भवति हि खसुखं तेन किं यत् कदाचित्
सदा वा सर्वदेवैतदपि किल यतस्तन्न चाप्राप्तपूर्वं ॥ ७ ॥

अर्थः—निगोदिया जीव, विष्टाका कीड़ा, पशु, राजा, भार वहन करनेवाले, भील, रोगी, नीरोगी, धनवान, निर्धन सवारी पर घूमनेवाले, पैदल चलनेवाले, युवा, बालक, वृद्ध और देवोंमें जो इन्द्रियोंसे उत्पन्न सुख कभी होते हैं या कदाचित् सदा देखनेमें आता हो, उससे क्या प्रयोजन? अथवा वह सर्वदा ही बना रहे तब भी क्या प्रयोजन? क्योंकि वह पहिले कभी भी नहीं प्राप्त हुआ ऐसा निराकुलतामय सुख नहीं है (अर्थात् इन्द्रियोंसे उत्पन्न सुख विनाशीक है और सुलभरूपसे कहीं न कहीं कुछ न कुछ अवश्य मिल जाता है; परन्तु निराकुलतामय सुख नित्य अविनाशी है और आत्माको बिना विशुद्ध किए कभी प्राप्त नहीं हो सकता, इसलिए इन्द्रिय सुख कैसा भी क्यों न हो वह कभी निराकुलतामय सुखकी तुलना नहीं कर सकता) ॥ ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञेयावलोकनं ज्ञानं सिद्धानां भविनां भवेत् ।
आद्यानां निर्विकल्पं तु परेषां सविकल्पकं ॥ ८ ॥

अर्थः—पदार्थोंका देखना और जानना (दर्शन और ज्ञान) सिद्ध और संसारी दोनोंके होता है; परन्तु सिद्धोंके वह निर्विकल्प–आकुलतारहित और संसारी जीवोंके सविकल्प आकुलतासहित होता है ॥ ८ ॥

व्याकुलः सविकल्पः स्यान्निर्विकल्पो निराकुलः ।
कर्मबन्धोऽसुखं चाद्ये कर्माभावः सुखं परे ॥ ९ ॥

अर्थः—जिस ज्ञानकी मौजूदगीमें आकुलता हो वह ज्ञान सविकल्पक और जिसमें आकुलता न हो वह ज्ञान निर्विकल्पक कहा जाता है। उनमें सविकल्प ज्ञानके होने पर कर्मोंका बन्ध और दुःख भोगना पड़ता है और निर्विकल्पक ज्ञानके होने पर कर्मोंका अभाव और परम सुख प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

बहून् वारान् मया भुक्तं सविकल्पं सुखं ततः ।
तन्नापूर्वं निर्विकल्पे सुखेऽस्तीहा ततो मम ॥ १० ॥

अर्थः—आकुलताके भंडार इस सविकल्पक सुखका मैंने बहुत वार अनुभव किया है। जिस गतिमें गया हूँ वहाँ मुझे सविकल्प ही सुख प्राप्त हुआ है, इसलिए वह मेरे लिए अपूर्व नहीं है; परन्तु निराकुलतामय–निर्विकल्पक सुख मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिए उसीकी प्राप्तिके लिए मेरी अत्यन्त इच्छा है–वह कब मिले इस आशासे सदा मेरा चित्त भटकता फिरता है ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञेयज्ञानं सरागेण चेतसा दुःखभंगिनः ।
निश्चयश्च विरागेण चेतसा सुखमेव तत् ॥ ११ ॥

अर्थः—रागी, द्वेषी और मोही चित्तसे तो पदार्थोंका ज्ञान किया जाता है वह दुःखस्वरूप है—उस ज्ञानसे जीवोंको दुःख भोगना पड़ता है और वीतराग, वीतद्वेष और वीतमोह चित्तसे जो पदार्थोंका ज्ञान होता है, वह सुख स्वरूप है—उस ज्ञानसे सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥

रवेः सुधायाः सुरपादपस्य चिंतामणेरुत्तमकामधेनोः ।
दिवो विदग्धस्य हरेरखर्वं गर्वं हरन् भो विजयी चिदात्मा ॥१२॥

अर्थः—हे आत्मन् ! यह चिदात्मा, सूर्य, अमृत, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, कामधेनु, स्वर्ग, विद्वान और विष्णुके अखंड गर्वको देखते देखते चूर करनेवाला है और विजयशील है ।

भावार्थः—यह चिदात्मा दीप्तिमें सूर्यसे भी चढ़ बढ़कर है—महादीप्तिमान है, आनन्द प्रदान करनेमें अमृतको भी जीतनेवाला है, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और कामधेनुसे भी अधिक इच्छाओंको पूरण करनेवाला है । स्वर्गसे भी अधिक सुख देनेवाला, अपनी विद्वत्तासे विद्वानकी विद्वत्ता जीतनेवाला और विष्णुसे अधिक अखंड प्रतापका भंडार है ॥ १२ ॥

चिंता दुःखं सुखं शांतिस्तस्या एतत्प्रतीयते ।
तच्छांतिर्जायते शुद्धचिद्रूपे लयतोऽचला ॥ १३ ॥

अर्थः—जिस अचल शांतिसे संसारमें यह मालूम होता हैं कि यह चिंता है, यह दुःख है, यह सुख और शांति है—वह (शांति) इसी शुद्धचिद्रूपमें लीनता प्राप्त करनेसे होती है । बिना शुद्धचिद्रूपमें लीनता प्राप्त किए चिन्ता, दुःख आदिके अभावके स्वरूपका ज्ञान नहीं हो सकता ॥ १३ ॥

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मुंच सर्वाणि कार्याणि संगं चान्यैश्च संगतिं ।
भो भव्य ! शुद्धचिद्रूपलये वांछास्ति ते यदि ॥ १४ ॥

अर्थः—हे भव्य ! यदि तू शुद्धचिद्रूपमें लीन होकर जल्दी मोक्ष प्राप्त करना चाहता है तो तू सांसारिक समस्त कार्य, बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रह और दूसरोंका सहवास सर्वथा छोड़ दे ॥ १४ ॥

मुक्ते बाह्ये परद्रव्ये स्यात्सुखं चेच्चितो महत् ।
सांप्रतं किं तदादोऽतः कर्मादौ न महत्तरं ॥ १५ ॥

अर्थः—जब बाह्य परद्रव्यसे रहित हो जाने पर भी आत्माको महान् सुख मिलता है तब कर्म आदिके नाश हो जाने पर तो उससे भी अधिक महान् सुख प्राप्त होगा ॥१५॥

इन्द्रियैश्च पदार्थानां स्वरूपं जानतोऽगिनः ।
यो रागस्तत्सुखं द्वेषस्तद् दुःखं भ्रांतिजं भवेत् ॥ १६ ॥
यो रागादिविनिर्मुक्तः पदार्थानखिलानपि ।
जानन्निराकुलत्वं यत्तात्त्विकं तस्य तत्सुखं ॥ १७ ॥

अर्थः—इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थोंके स्वरूप जाननेवाले इस जीवका जो उनमें राग होता है वह सुख और द्वेष होता है वह दुःख है यह मानना नितांत भ्रम है; किन्तु जो पुरुष राग और द्वेष आदिसे रहित है. समस्त पदार्थोंको जानते हुए भी समस्त प्रकारकी आकुलतासे रहित है–निराकुल है, वही वास्तविक सुख है ।

भावार्थः—यह जीव स्त्री, पुत्र आदि परपदार्थोंमें कुछ राग होनेसे सुख और उनमें द्वेष हो जानेसे दुःख मानता है;

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

परन्तु वास्तवमें वे दोनों ही (रागद्वेष) दुःखस्वरूप है; क्योंकि उनसे जीवके परिणाम आकुलतामय रहते हैं; किन्तु जहां पर आकुलता न हो वही वास्तविक सुख है और वह सुख रागद्वेष आदिसे रहित समस्त पदार्थोंके जाननेवाले महान पुरुषके ही होता है ॥ १६–१७ ॥

इन्द्राणां सार्वभौमानां सर्वेषां भावनेशिनां ।
विकल्पसाधनैः स्वार्थैर्व्याकुलत्वात्सुखं कुतः ॥ १८ ॥
तात्त्विकं च सुखं तेषां ये मन्यंते ब्रुवंति च ।
एवं तेषामहं मन्ये महती भ्रांतिरुद्गता ॥ १९ ॥

अर्थः—इन्द्र, चक्रवर्ती और भवनवासी देवोंके स्वामियोंके जितने इन्द्रियोंके विषय होते हैं वे विकल्पोंसे होते हैं। (अपने अर्थोंके सिद्ध करनेमें उन्हें नाना प्रकारके विकल्प करने पड़ते हैं और) उन विकल्पोंसे सदा चित्त आकुलतामय रहता है, इसलिए वास्तविक सुख उन्हें कभी प्राप्त नहीं होता; जो पुरुष, उनके सुखको वास्तविक सुख समझते हैं और उस सुखकी वास्तविक सुखमें गणना करते हैं; मैं (ग्रन्थकार) समझता हूँ उनकी यह भारी भूल है। वह सुख कभी वास्तविक सुख नहीं हो सकता ॥ १८–१९ ॥

विमुच्य रागादि निजं तु निर्जने
पदे स्थिरतानां सुखमत्र योगिनां ।
विवेकिनां शुद्धचिदात्मचेतसां
विदां यथा स्यान्न हि कस्यचित्तथा ॥ २० ॥

अर्थः—इसलिए जो योगिगण बाह्य-अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहका त्यागकर निरूपद्रव एकान्त स्थानमें निवास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं, विवेकी—हित-अहितके जानकार—हैं, शुद्धचिद्रूपमें रत हैं और विद्वान हैं उन्हें ही यह निराकुलतामय सुख प्राप्त होता है, उनसे अन्य किसी भी मनुष्यको नहीं ॥ २० ॥

इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषण विरचितायां
तत्त्वज्ञान तरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपये सुखस्वरूप-
प्रतिपादकः सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा विरचित
तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपमें प्रेम बढे इस
कारण वास्तविक सुखका प्रतिपादन करनेवाला
सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अठारहवाँ अध्याय

शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिका क्रम

श्रुत्वा श्रद्धाय वाचा ग्रहणमपि दृढं चेतसा यो विधाय
कृत्वांतः स्थैर्यबुद्ध्या परमनुभवनं तल्लयं याति योगी ।
तस्य स्यात्कर्मनाशस्तदनु शिवपदं च क्रमेणेति शुद्ध-
चिद्रूपोऽहं हि सौख्यं स्वभवमिह सदासन्न भव्यस्य नूनं ॥ १ ॥

अर्थः—जो योगी "मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" ऐसा भले प्रकार श्रवण और श्रद्धान कर, वचन और मनसे उसे ही दृढ़ रूपसे धारण कर, अन्तरंगको स्थिरकर और उसे सर्वसे पर—सर्वोत्तम जानकर उसका (शुद्धचिद्रूपका) अनुभव और उसमें अनुराग करता है वह आसन्न भव्य—बहुत जल्दी मोक्ष जानेवाला योगी—क्रमसे समस्त कर्मोंका नाश कर अतिशय विशुद्ध मोक्षमार्ग और निराकुलतामय आत्मिक सुखका लाभ करता है ।

भावार्थः—'मैं शुद्धचिद्रूप हूं'—ऐसा बिना श्रद्धान और ज्ञान किए शुद्धचिद्रूपमें अनुराग नहीं हो सकता, अनुरागके बिना उसका अनुभव, अनुभव न करनेसे कर्मोंका नाश, कर्मोंका नाश न होनेसे मोक्षकी प्राप्ति और मोक्षकी प्राप्ति न होनेसे शांतिमय सुख कदापि नहीं मिल सकता ।। १ ।।

गृहिभ्यो दीयते शिक्षा पूर्वं षट्कर्मपालने ।
व्रतांगीकरणे पश्चात्संयमग्रहणे ततः ॥ २ ॥
यतिभ्यो दीयते शिक्षा पूर्वं संयमपालने ।
चिद्रूपचिंतने पश्चादयमुक्तो बुधैः क्रमः ॥ ३ ॥

अर्थः—जो मनुष्य गृहस्थ हैं उन्हें पहिले देवपूजा आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छ आवश्यक कर्मोंके पालनेको, पश्चात् व्रतोंके धारण करनेकी और फिर संयम ग्रहण करनेको शिक्षा देनी चाहिये; परन्तु जो यति हैं–निर्ग्रंथरूप धारणकर बनवासी हो गए हैं, उन्हें सबसे पहिले संयम पालनेकी और पीछे शुद्धचद्रूपके ध्यान करनेकी शिक्षा देनी चाहिए। यह क्रम ज्ञानीओंने कहा है ।। २–३ ।।

संसारभीतितः पूर्वं रुचिर्मुक्तिसुखे दृढा ।
जायते यदि तत्प्राप्तेरुपायः सुगमोस्ति तत् ।। ४ ।।

अर्थः—जिन मनुष्योंको सर्वप्रथम संसारके भयसे मोक्ष-सुखकी प्राप्तिमें रुचि दृढ़ है—जल्दी संसारके दुःखोंसे मुक्त होना चाहते हैं। उन्हें समझ लेना चाहिए कि मुक्तिकी प्राप्तिका सुगम उपाय मिल गया—वे बहुत शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

भावार्थः—जब तक मोक्ष पानेकी हृदयमें कामना नहीं होती—मोक्ष सुखके अनुभव करनेमें प्रेम नहीं होता, तब तक कदापि मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती और उसमें प्रेम करनेसे तो यह शीघ्र ही मिल जाता है—वे सुगमतामें बहुत जल्दी मोक्ष चले जाते हैं। अधिक काल तक उन्हें संसारमें नहीं भटकना पड़ता ।। ४ ।।

युगपज्जायते कर्ममोचनं तात्त्विकं सुखं ।
लयाच्च शुद्धचिद्रूपे निर्विकल्पस्य योगिनः ।। ५ ।।

अर्थः—जो योगी निर्विकल्पक है—समस्त प्रकारकी आकुलताओंसे रहित हैं और शुद्धचिद्रूपमें लीन हैं उन्हें एक साथ समस्त कर्मोंका नाश और तात्त्विक सुख प्राप्त हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—शुद्धचिद्रूपमें लीनता होनेसे एक साथ समस्त कर्मोंका नाश और वास्तविक सुख प्राप्त होता है, इसलिए योगियोंको चाहिए कि समस्त प्रकारके विकल्पोंको छोड़कर शुद्धचिद्रूपमें ही अनुराग करें ।। ५ ।।

अष्टावंगानि योगस्य यमो नियम आसनं ।
प्राणायामस्तथा प्रत्याहारो मनसि धारणा ॥ ६ ॥
ध्यानश्चैव समाधिश्च विज्ञायैतानि शास्त्रतः ।
सदैवाभ्यसनीयानि भदन्तेन शिवार्थिना ॥ ७ ॥ युग्मं ॥

अर्थः—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ अंग योगके हैं । इन्हींके द्वारा योगकी सिद्धि होती है, इसलिए जो मुनि मोक्षभिलाषी हैं,—समस्त कर्मोंसे अपनी आत्माको मुक्त करना चाहते हैं—उन्हें चाहिए कि शास्त्रसे इनका यथार्थ स्वरूप जानकर सदा अभ्यास करते रहें ।। ६–७ ।।

भावान्मुक्तो भवेच्छुद्धचिद्रूपोहमितिस्मृतेः ।
यद्यात्मा क्रमतो द्रव्यात्स कथं न विधीयते ।। ८ ।।

अर्थः—यह आत्मा "मैं शुद्धचिद्रूप हूँ" ऐसा स्मरण करते ही जब भावमुक्त हो जाता है तब क्रमसे द्रव्यमुक्त तो अवश्य ही होगा ।

भावार्थः—शुद्धचिद्रूपके स्मरणमें जब इतनी सामर्थ्य है कि उस स्मरण मात्रसे ही भाव संसारसे छूटकर भाव मोक्ष प्राप्त करता है, तब यह परद्रव्य संसारका सम्बन्ध तो इस आत्मासे अवश्य ही दूर कर देगा । शुद्धचिद्रूपके स्मरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेसे कभी भी द्रव्य और भावसंसारका सम्बन्ध नहीं रह सकता ॥ ८ ॥

क्षणे क्षणे विमुच्येत शुद्धचिद्रूपचिंतया ।
तदन्यचिंतया नूनं बध्येतैव न संशयः ॥ ९ ॥

अर्थः—यदि शुद्धचिद्रूपका चिन्तवन किया जायगा तो प्रतिक्षण कर्मोंसे मुक्ति होती चली जायगी और यदि परपदार्थोंका चिन्तवन होगा तो प्रतिसमय कर्मबन्ध होता रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ९ ॥

सयोगक्षीणमिश्रेषु गुणस्थानेषु नो मृतिः ।
अन्यत्र मरणं प्रोक्तं शेषत्रिक्षपकैर्विना ॥ १० ॥

अर्थः—सयोगकेवली, क्षीणमोह, मिश्र और क्षपकगुणस्थान आठवें, नवमें और दशवेंमें मरण नहीं होता; परन्तु इनसे भिन्न गुणस्थानोंमें मरण होता है ॥ १० ॥

मिथ्यात्वेऽविरते मृत्वा जीवा यांति चतुर्गतीः ।
सासादने विना श्वभ्रं तिर्यगादिगतित्रयं ॥ ११ ॥

अर्थः—जो जीव मिथ्यात्व और अविरत सम्यग्दृष्टि (जिसने सम्यक्त्व होनेसे पहिले आयुबन्ध कर लिया हो) गुणस्थानोंमें मरते हैं, वे मनुष्य, तिर्यंच, देव, नरक चारों गतियोंमें और सासादन गुणस्थानमें मरनेवाले नरकगतिमें न जाकर शेष तिर्यंच आदि तीनों गतियोंमें जाते हैं ॥ ११ ॥

अयोगे मरणं कृत्वा भव्या यांति शिवालयं ।
मृत्वा देवगतिं यांति शेषेषु सप्तसु ध्रुवं ॥ १२ ॥

अर्थः—अयोगकेवली—चौदहवें—गुणस्थानसे मरनेवाले जीव मोक्ष जाते हैं और शेष सात गुणस्थानोंसे मरनेवाले देव होते हैं ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानं कृत्वा यांत्यधुना दिवं ।
तत्रेन्द्रियसुखं भुक्त्वा श्रुत्वा वाणीं जिनागतां ॥ १३ ॥
जिनालयेषु सर्वेषु गत्वा कृत्वार्चनादिकं ।
ततो लब्ध्वा नरत्वं च रत्नत्रय विभूषणं ॥ १४ ॥
शुद्धचिद्रूपसद्ध्यानबलात्कृत्वा विधिक्षयं ।
सिद्धस्थानं परिप्राप्य त्रैलोक्यशिखरे क्षणात् ॥ १५ ॥
साक्षाच्च शुद्धचिद्रूपा भूत्वात्यंतनिराकुलाः ।
तिष्ठंत्यनंतकालं ते गुणाष्टक समन्विताः ॥ १६ ॥

अर्थः—इस समय भी जो जीव शुद्धचिद्रूपके ध्यान करने वाले हैं वे मरकर स्वर्ग जाते हैं और वहां भले प्रकार इन्द्रियजन्य सुखोंको भोगकर, भगवान जिनेन्द्रके मुखसे जिनवाणी श्रवणकर, समस्त जिनमन्दिरोंमें जा और उनकी पूजन आदि कर, मनुष्यभव व सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्रको प्राप्तकर, शुद्धचिद्रूपके ध्यानसे समस्त कर्मोंका क्षयकर सिद्धस्थानको प्राप्त होकर तीन लोकके शिखर पर जा विराजते हैं तथा वहां पर साक्षात् शुद्धचिद्रूप होकर अत्यन्त निराकुल और केवलदर्शन, केवलज्ञान, अव्याबाधसुख आदि आठों गुणोंसे भूषित हो अनन्तकालपर्यन्त निवास करते हैं ॥ १३–१६ ॥

क्रमतः क्रमतो याति कीटिका शुकवत्फलं ।
नगस्थं स्वस्थितं ना च शुद्धचिद्रूपचिंतनं ॥ १७ ॥

अर्थः—जिस प्रकार कीड़ी (चींटी) क्रम क्रमसे धीरे धीरे वृक्षके ऊपर चढ़कर शुकके समान फलका आस्वादन करती है, उसी प्रकार यह मनुष्य भी क्रम–क्रमसे शुद्धचिद्रूपका चिन्तवन करता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थः—जिस प्रकार कीड़ी एकदम तोतेके समान फलके पास जाकर उसका आस्वादन नहीं कर सकती; किन्तु पृथ्वीसे वृक्षके मूलभाग पर चढ़कर धीरे-धीरे फलके पास पहुँचती है और पीछे उसके रसका स्वाद लेती है, उसी प्रकार शुद्धचिद्रूपका चिंतवन भी कोई मनुष्य एक साथ नहीं कर सकता; किन्तु क्रम-क्रमसे परद्रव्योंसे अपनी ममता दूर करता हुआ उसका चिन्तवन कर सकता है ।। १७ ।।

गुर्वादीनां च वाक्यानि श्रुत्वा शास्त्राण्यनेकशः ।
कृत्वाभ्यासं यदा याति तद्धि ध्यानं क्रमागतं ॥ १८ ॥

जिनेशागमनिर्यासमात्रं श्रुत्वा गुरोर्वचः ।
विनाभ्यासं यदा याति तद्ध्यानं चाक्रमागतं ॥ १९ ॥

अर्थः—जो पुरुष-गुरु आदिके वचनोंको भले प्रकार श्रवणकर और शास्त्रोंका भले प्रकार अभ्यासकर शुद्धचिद्रूपका चिन्तवन करता है, उसके क्रमसे शुद्धचिद्रूपका चिन्तवन ध्यान कहा जाता है; किन्तु जो पुरुष भगवान जिनेन्द्रके शास्त्रोंके तात्पर्यमात्रको बतलानेवाले गुरुके वचनोंको श्रवणकर अभ्यास नहीं करता—बारबार शास्त्रोंका मनन चिन्तवन नहीं करता—उसके जो शुद्धचिद्रूपका ध्यान होता है वह अक्रमागत ध्यान कहा जाता है ।। १८-१९ ।।

न लाभमानकीर्त्यर्थां कृता कृतिरियं मया ।
किंतु मे शुद्धचिद्रूपे प्रीतिः सेवात्रकारणं ॥ २० ॥

अर्थः—अन्तमें ग्रन्थकार ग्रन्थके निर्माणका कारण बतलाते हैं कि यह जो मैंने ग्रन्थ बनाया है वह किसी प्रकारके लाभ, मान या कीर्तिकी इच्छासे नहीं बनाया; परन्तु शुद्धचिद्रूपमें

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

मेरा (जो) गाढ़ प्रेम है इसी कारण इसका निर्माण हुआ है ॥ २० ॥

जातः श्रीसकलादिकीर्तिमुनिपः श्रीमूलसंघेग्रणी–
स्तत्पट्टोदयपर्वते रविरभूद्भव्यांबुजानन्दकृत् ।
विख्यातो भुवनादिकीर्तिरथ यस्तत्पादकंजे रतः
तत्त्वज्ञानतरंगिणीं स कृतवानेतां हि चिद्भूषणः ॥ २१ ॥

अर्थः—मूल संघके आचार्योमें अग्रणी–सर्वोत्तम विद्वान आचार्य सकलादिकीर्ति हुये । उनके पट्टरूपी उदयाचल पर सूर्यके समान भव्यरूपी कमलोंको आनन्द प्रदान करनेवाले प्रसिद्ध भट्टारक भुवनादिकीर्ति हुये । उन्हीके चरण कमलोंका भक्त मैं ज्ञानभूषण भट्टारक हूँ जिसने कि इस तत्त्वज्ञानतरंगिणी ग्रन्थका निर्माण किया है ॥ २१ ॥

क्रीडंति ये प्रविश्येनां तत्त्वज्ञानतरंगिणीं ।
ते स्वर्गादिसुखं प्राप्य सिद्ध्यंति तदनंतरं ॥ २२ ॥

अर्थः—जो महानुभाव इस तत्त्वज्ञानतरंगिणी (तत्त्वज्ञानरूपी नदी)में प्रवेशकर क्रीड़ा(–अवगाहन) करेंगे वे (स्वर्ग आदिके सुखोंको भोगकर मोक्ष सुखको प्राप्त होंगे । स्वर्ग सुखके भोगनेके बाद उन्हें अवश्य मोक्ष सुखकी प्राप्ति होगी) ॥२२॥

यदैव विक्रमातीताः शतपंचदशाधिकाः ।
षष्टिः संवत्सरा जातास्तदेयं निर्मिता कृतिः ॥ २३ ॥

अर्थः—जिस समय विक्रम संवतके पन्द्रहसौ साठ वर्ष (शक संवत्के चौदह सौ पच्चीस अथवा ख्रीष्ट संवतके पन्द्रहसौ तीन वर्ष) बीत चुके थे, उस समय इस तत्त्वज्ञान-तरंगिणीरूपी कृतिका निर्माण किया गया ॥ २३ ॥

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ग्रन्थसंख्यात्र विज्ञेया लेखकैः पाठकैः किल ।
षट्त्रिंशदधिका पंचशती श्रोतृजनैरपि ॥ २४ ॥

अर्थः—इस ग्रन्थकी सब श्लोक संख्या पांच सौ छत्तीस है, ऐसा लेखक, पाठक और श्रोताओंको समझ लेना चाहिये अर्थात् यह ग्रन्थ पांच सौ छत्तीस श्लोकोंमें समाप्त हुआ है ॥ २४ ॥

इति मुमुक्षुभट्टारक श्री ज्ञानभूषणविरचितायां
तत्त्वज्ञानतरंगिण्यां शुद्धचिद्रूपप्राप्तिक्रम
प्रतिपादकोऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भट्टारक ज्ञानभूषण द्वारा विरचित तत्त्वज्ञान तरंगिणीमें शुद्धचिद्रूपकी प्राप्तिके क्रमका प्रतिपादन करनेवाला अठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ १८ ॥

॥ इति श्री तत्त्वज्ञानतरंगिणी संपूर्णम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धभगवानमें जैसी सर्वज्ञता, जैसी प्रभुता, जैसा अतीन्द्रिय आनन्द तथा जैसा आत्मवीर्य है वैसी ही सर्वज्ञता, प्रभुता, आनन्द और वीर्यकी शक्ति तेरे आत्मामें भी भरी ही है। भाई! एक वार हर्षित तो हो कि अहो! मेरा आत्मा ऐसा परमात्म स्वरूप है, ज्ञानानन्दकी शक्तिसे भरा है। मेरे आत्माकी शक्तिका घात नहीं हुआ है। अरेरे! मैं हीन हो गया, विकारी हो गया...अब मेरा क्या होगा!—ऐसा डर मत, उलझनमें न पड़, हताश न हो...एक स्वभावकी महिमा लाकर अपनी शक्तिको स्फुरित कर।

—पूज्य कानजीस्वामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org